खंड

3

उत्तरउपनिवेशवाद और अनुवाद

इकाई 11
प्रवासी साहित्य और 'सांस्कृतिक अनुवाद' 111

इकाई 12
उपाश्रित साहित्य का अनुवाद 123

इकाई 13
भाषा आंदोलन और अनुवाद 133

इकाई 14
अंग्रेजी भाषा अनुवाद 142

इकाई 12 'उपाश्रित साहित्य' का अनुवाद

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 उपाश्रित अध्ययन से तात्पर्य

12.3 उपाश्रित साहित्य से तात्पर्य

12.4 उपाश्रित अध्ययन और अनुवाद

12.4.1 उपाश्रितों का अनुवाद

12.4.2 अनुवादक की भूमिका

12.5 अनुवाद विमर्श और उपाश्रितों का अनुवाद

12.6 सारांश

12.7 अभ्यास के लिए प्रश्न

12.8 शब्दावली

12.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

12.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- उपाश्रित अध्ययन के क्षेत्र और उसके आसपास हुए शैक्षिक विकास को जान सकेंगे;
- अनुवाद और उपाश्रित अध्ययन के संबंध का वर्णन कर सकेंगे;
- नये क्षेत्रों से अवगत हो सकेंगे जहां अनुवाद मापदण्ड को तेजी से बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है;
- किस प्रकार की जटिलताएँ उपाश्रित पाठों के अनुवाद में होती है, इसका अनुमान कर सकेंगे;
- विशेषतौर पर 'उपाश्रितों' के संदर्भ में अनुवाद की भूमिका को बता सकेंगे; और
- उपाश्रित पाठ के अनुवाद में प्रायः उठने वाले अनुवाद के निर्णायक मुद्दों को पहचान सकेंगे।

12.1 प्रस्तावना

सर्वप्रथम, यह जानने हैं कि 'उपाश्रित' है क्या? अधिकांश अंग्रेजी शब्दकोश 'सबअल्टर्न' शब्द की व्याख्या 'एक (सैन्य) अधिकारी जिसका पद कप्तान से नीचे है' के रूप में या 'एक निचले पद के अधिकारी' के रूप में करते हैं। इस प्रकार 'उपाश्रित' शब्द खासतौर पर एक पदानुक्रमिक व्यवस्था या अनुक्रम में हीनता से आसपास का अर्थ या संबंध रखता है। अधिकांश मानव समाज चाहे वे सामाजिक हो या प्रशासनिक, राजनैतिक हो या कार्यालयी या व्यापारिक सामान्यतः पदानुक्रमिक व्यवस्था के अंतर्गत कार्य करते हैं जहाँ श्रेणियां बनाई जाती हैं और उनका अनुसरण किया जाता है। यदि हम भारत के इतिहास पर दृष्टि डालें तो देखेंगे कि हमारे अधिकांश समाजों में हमेशा से ही पदानुक्रमिक व्यवस्था रही है। इन समाजों में जनजातियां अैर समुदाय भी शामिल हैं। इससे यह कहा जा सकता है कि वर्ग व्यवस्था भारत के इतिहास और संभवतः भारतीय मानस में भी गहती जीम हुई है। हम लगभग सभी जगह व्यक्ति की पहचान अर्थात् पारिवारिक नाम या पारिवारिक परंपरा उसकी आर्थिक स्थिति, उसकी लैंगिक और शारीरिक पहचान, उसके कार्य/कार्यालयी संगठन इत्यादि के आधार पर सामाजिक विभाजन

को मौजूद पाते हैं। यह एक तथ्य है जो मानविकी और खासतौर पर सामाजिक विज्ञान में अध्ययन एवं खोज का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र रहा है।

हम जानते हैं कि जाति व्यवस्था व्यापक रूप में भारतीय समाज के मुख्य लक्षणों में से एक रही है। इस पदानुक्रम के कारण हमारे समाज में तथाकथित ''सामाजिक कुप्रथाएं'' जैसे अस्प यता, कन्या भ्रूण हत्या, सतीप्रथा आदि विभिन्न भारतीय समाजों में फैली हुई हैं। अधिकांश अध्ययन आज इस ओर संकेत करता है कि भारत के अधिकांश भागों में विगत समय में ब्राह्मणों ने हाशिए पर पड़े समुदायों जैसे कि शूद्रों का शोाण किया और संभवतः पहले से कुछ कम स्तर पर अब भी कर रहे हैं। देशभर में शूद्र और लोगों के ऐसे ही अन्य समूह हमेशा अपने को ब्राह्मण और वैसे ही अन्य समूहों से हीन समझते रहे हैं जो इसके विपरित स्वयं को श्रेठ मानते रहे हैं। यह श्रेठ और हीन भावना या व्यवहार समाज को कड़े/गहरे द्वि ाासन की ओर ले गए जिसे सैद्धांतिक रूप से 'केन्द्र व हाशिए या केन्द्र बनाम हाशिए' नाम दिया गया। इतिहासकारों और समाज विज्ञानियों ने इस विभाजन या द्विभाजनीकरण को भारतीय समाज के मुख्य लक्षण के रूप में प्रस्तुत किया है। 1980 के दशक में उपाश्रित अध्ययन की पहल ने भारत के जनसांख्यिक, राजनैतिक और राष्ट्रीय इतिहास लेखन के परिप्रेक्ष्य के केन्द्र के रूप में माने गए अभिजात्य और परिधि या हाशिए के रूप में माने गए लोग या उपाश्रित के पंथ चिह्नित करके अपना उत्तेजित करने वाला अन्वेषण आरंभ किया। यद्यपि समय-समय पर इस जाति प्रथा की आलोचना अनेक संतों, सामाजिक विचारकों, लेखकों जैसे बसवन्ना और कबीर, नामक और चैतन्य, सरलादास और शंकरदेव व टैगोर ने की है। यह भी सर्वविदित तथ्य है कि डॉ. बी.आर. अम्बेडकर के रूप में जाति प्रथा और खासतौर पर हरिजनों ने अपना सबसे बहुसर्जक नेता और प्रवक्ता पाया, जिन्होंने निम्नवर्ग के लोगों पर अत्याचारों के विरुद्ध तथा व्यापक तौर पर हाशिए के लोगों के अत्थान के लिए आवाज उठाई।

लोगों की पहचान और सामाजिक स्थिति के आधार पर इस प्रकार के ध्रुवीकरणों ने समुदायों या लोगों के समूहों को न केवल प थक किया अपितु यह हिंसा, अत्यधिक घ णा और विभिन्न प्रकार के शोषण में परिणत हुआ। भारतीय सामाजिक व्यवस्था में अनुक्रम पहले भी हिंसा और रक्तपात का कारण रहा है और वर्तमान में भी कई प्रतिद्वन्द्वों सामुदायिक संघ्र्षो और कभी-कभी मौत का भी कारण है। इस प्रकार के अधिकांश अनुक्रम राजनैतिक तौर पर निर्मित किए जाते हैं ताकि मानव समाज में सत्ताशक्ति बनी रहे।

पदानुक्रम और शक्ति का संबंध बहुत ही पुराना है। यदि हम भारत के औपनिवेि ाक काल को देखें, तो वहां हमें शक्ति की तीन सुस्पष्ट संरचनाएं मिलेंगी : ईस्ट इंडिया कम्पनी और उसके तदन्तर सभी ब्रिटिश कार्यालय एक खास पदानुक्रम के भीतर श्रेणियों में कार्य करते थे (प्रथम शक्ति-संरचना) उन्होंने साथ मिलकर भारतियों पर शासन किया (द्वितीय शक्ति संरचना) किन्तु वे भारतीय भी एक अखंडित पहचान में गठित नहीं थे अपितु भाषा, अतीत, संस्कृति इत्यादि आधारों पर विभाजित थे और उनकी अपनी भी शक्ति संरचनाएं थीं (तृतीय शक्ति संरचना)।

12.2 उपाश्रित अध्ययन से तात्पर्य

उपाश्रित क्या है, यह समझने से अब उपाश्रित अध्ययन की ओर बढ़ते हैं। 1970 के दशक के अंत तक आते-आते ब्रिटेन में बसे युवा इतिहासकारों के एम समूह ने दक्षिण एशिया, उसके समाज और इतिहास-लेखन पर विचार विमर्श की एक शृंखला प्रारंभ की। इस समूह का नेतृत्व 'सबअल्टर्न स्टडीज' के संस्थापक संपादक रणजीत गुहा ने किया। इसमें इतिहासकार और विभिन्न अनु ाासनों के विद्वान थे जैसे कि ज्ञान प्रका ा, दीपे ा चक्रवर्ती, पार्थ चटर्जी, ज्ञानेन्द्र पाण्डेय, डेविड ऑर्नल्ड, सुमित सरकार, डेविड हार्डिमैन, शाहिद अमीन और गौतम भद्र।

प्रारंभिक तौर पर 'सबअल्टर्न स्टडीज' तीन खण्डों की शृंखला के रूप में लाने की योजना थी जो भारतीय राष्ट्रवाद के इतिहास-लेखन में उपनिवेशवादियों और बुर्जुआ-राष्ट्रवादियों के 'अभिजात्यवाद' की अन्वेषण करे। इसके प्रथम खण्ड की भूमिका में विश्वास दिलाया गया कि यह शृंखला 'दक्षिण एशियाई अध्ययन के क्षेत्र में गौण विषयों के एक सुव्यवस्थित व सूचनाबद्ध विचार-विमर्श को प्रोत्साहन देने और इस प्रकार इस क्षेत्र के अधिकांश अन्वेषण व शैक्षिक कार्य में अभिजात्य पक्षपात के लक्षणों को संशोधित करने में सहायता देने के लिए' थी। इस क्षेत्र में निबंधों के प्रथम खंड के आमुख ने भी यही जारी रखा कि 'सबअल्टर्न' शब्द दक्षिण एशियाई समाज में अधीनता के

सामान्य लक्षणों के नाम के तौर पर प्रयोग किया जाएगा, चाहे यह वर्ग जाति, आयु, लिंग तथा कार्यालय के आधार पर या किसी और तरीके से अभिव्यक्त हो।

विभिन्न वर्ग-आधारित पहचान के लक्षणों के साथ लोगों की एक भिन्न श्रेणी के रूप में उपाश्रित, सम्पूर्ण भारतीय जनसंख्या तथा अभिजात्य के रूप में वर्णित या माने गए लोगों के बीच जनसंख्यिकीय अंतर के रूप में पहचानी जाती है। 'अभिजात्य' भी दो श्रेणियों में चिह्नित हैं। पहला, प्रभावी विदेशी समूह जिसके अंतर्गत सभी गैर-भारतीय अर्थात् मुख्यतः औपनिवेि ाक शासन के ब्रिटिश अधिकारी और विदेशी उद्योगपति, व्यापारी, बागान मालिक, जमींदार और मिशनरी आते हैं। दूसरा प्रभावी स्वदेशी समूह जिसके अंतर्गत दो स्तरों पर वर्ग और हितों का संचालन होता है : अखिल भारतीय स्तर पर (सबसे बड़े सामन्ती प्रभावी ाली व्यक्ति, औद्योगिक और व्यापारिक बुर्जुआ के प्रतिनिधि तथा नौकर ाही के उच्चतम स्तरों पर कार्यरत स्वदेशी लोग) तथा क्षेत्रीय व स्थानीय स्तरों पर (या तो अखिल भारतीय स्तर पर प्रभावी समूहों के सदस्य या फिर अखिल भारतीय प्रभावी समूह के लोगों से आनुक्रमिक तौर पर निम्न सामाजिक स्तर से संबंध रखने वाले किंतु उन्हीं के हितों के लिए कार्यरत लोग)।

उपाश्रित अध्ययन की पहल के प्रचार और उसके राजनीतिक पक्षों को समझने के लिए हमें आरंभिक खण्ड में रणजीत गुहा द्वारा की गई कुछ बुनियादी टिप्पणियों पर नजर डाल लेनी चाहिए।

1. भारतीय राष्ट्रवाद का इतिहास-लेखन एक लम्बे समय तक अभिजात्यवाद से शासित रहा है। औपनिवेि ाक अभिजात्यवाद और बुर्जुआ अभिजात्यवाद दोनों ही भारत में ब्रिटिश शासन के वैचारिक उत्पादन के रूप में उत्पन्न हुए किंतु शक्ति के स्थानांतरण में रहे। ये दोनों ब्रिटेन तथा भारत में विचार-विमर्श के क्रमशः नव-उपनिवेशवादी और नवराष्ट्रवाद रूपों में मिल गए।
2. अभिजात्यवाद के ये दोनों प्रकार यह पूर्वाग्रह रखते हैं कि भारतीय राष्ट्र का निर्माण और इस प्रक्रिया से अवगत कराने वाली राष्ट्रवाद की चेतना का विकास केवल या मुख्यतौर पर अभिजात्य उपलब्धियां थीं।
3. औपनिवेि ाक अभिजात्यवाद और इतिहास-लेखन ने भारतीय राष्ट्रवाद को मुख्यतः प्रेरणा और प्रतिक्रिया के कार्यरूप में परिभाषित किया। एक संकुचित व्यवहारिक दृष्टिकोण पर आधारित यह इतिहास-लेखन राष्ट्रवाद को उपनिवेशवाद द्वारा सृजित संस्थानों, अवसरों, साधनों आदि की भारतीय अभिजात्य ने जिन गतिविधियों और विचारों से प्रतिक्रिया दी, उनके योग के रूप में प्रस्तुत करता है।
4. बुर्जुआ अभिजात्य इतिहास-लेखन का सामान्य अभिमुख भारतीय राष्ट्रवाद को मुख्यतः एक आदर्शवादी कार्य के रूप में प्रस्तुत करना रहा है जिसमें स्वदेशी अभिजात्य लोगों को अधीनता से स्वाधीनता की ओर ले गए। इस प्रकार भारतीय राष्ट्रवाद का इतिहास भारतीय अभिजात्य की आध्यात्मिक जीवनी के तौर पर लिखा गया है।
5. हालांकि इस प्रकार का अभिजात्य इतिहास-लेखन भी अपने उपयोगों के बिना नहीं है। यह औपनिवेि ाक शासन के ढांचे इसके विभिन्न अंगों के संचालन, इसे झेलने वाले वर्गों के सुयोजन की प्रकृति इत्यादि को जानने में हमारी सहायता करता है।
6. हालांकि इस प्रकारस का ऐतिहासिक लेखन हमारे लिए भारतीय राष्ट्रवाद की व्याख्या नहीं कर सकता। व्याख्या करना तो दूर यह लोगों द्वारा किए गए स्वयं भू (योगदान) अर्थात् इस राष्ट्रवाद के निर्माण और विकास में अभिजात्य से स्वतंत्र योगदान करने में भी असफल रह जाता है।
7. अभिजात्य इतिहास-लेखन की यह अपर्याप्तता उस राजनीतिक संकुचित और पक्षपातपूर्ण दृष्टिकोण से आती है जिससे अभिजात्य इतिहस-लेखन अपने वर्ग दृष्टिकोण के आधार पर वचनबद्ध है। इस प्रकार के सभी लेखन में भारतीय राजनीति के मानक केवल मुख्यतः देश के शासन के लिए ब्रिटिश द्वारा लाए गए संस्थान, उनके अनुकूल नीतियों, व्यवहारों के समूह, तथा अधिरचना के अन्य तत्व माने या व्यक्त किए जाते हैं।
8. 'लोगों की राजनीति' इस अनैतिहासिक इतिहास-लेखन में छोड़ दी गई है। उपनिवेशवाद की घुसपैठ के बावजूद राज के अन्तर्गत फैलती स्थितियों में स्वयं को अनुकूल करती हुई और काफी हद तक रूप और सारांश दोनों में बिल्कुल नए विभेद विकसित करते हुए लोगों की राजनीति सशक्त रूप से संचालित होती रही।

9. इस राजनीति के सबसे महत्वपूर्ण लक्षणों में से एक मुखतौर पर संघटन के उन पक्षों से संबंधित है। जिनकी अभिजात्य इतिहास-लेखन ने बहुत ही कम व्याख्या की है। अभिजात्य राजनीति के क्षेत्र में संघटन अक्षां ातः प्राप्त किया गया जबकि उपाश्रित राजनीति के क्षेत्र में यह समस्तर पर प्राप्त किया गया।

10. किसी भी खास समय और किसी भी खास घटनाक्रम में इसके प्रधान तत्व दूसरों को अधीन करने वाले दृष्टिकोण के साथ। एक सम्पूर्ण के तौर पर इस क्षेत्र में सक्रिय विचारधारा इसकी सामाजिक संरचना की विविधता को प्रतिबिंबित करती है।

11. फिर भी इस राजनीति के विशेष लक्षणों का एक दूसरा समूह शोाण की उन परिस्थितियों से लिया गया है जिनमें उपाश्रित वर्ग विविध अं ाों तक अधीन थे। साथ ही साथ इसके अधिसंख्यक नायकों अर्थात् कार्यकर्ता और किसानों के उत्पादक श्रम के साथ तथा अनौद्योगिक शहरी निर्धनों के शारीरिक श्रम व अधीनस्थ बुर्जुआ के निम्न वर्गों के बौद्धिक श्रम के साथ लोगों की राजनीति के संबंध से लिया गया है।

12. जनता की राजनीति के कई और सुस्पष्ट लक्षण हैं। राष्ट्र के लिए आवाज उठाने में भारतीय बुर्जुआ की असफलता एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक सत्य है।

13. फिर भी उपाश्रित राजनीति के क्षेत्र से उदित हुए राष्ट्रीय आंदोलन के प्रयास को राष्ट्रीय स्वाधीनता के लिए एक पूर्ण विकसित संघर्ष का रूप देने में पर्याप्त शक्तिशाली नहीं थे। उदाहरण के लिए वेतनभोगी वर्ग अपने सामाजिक अस्तित्व की वस्तुगत एक वर्ग के तौर पर अब तक पर्याप्त रूप से व्यस्क नहीं था ना ही यह अब तक किसानों के साथ दृढ़ता से सहायक था।

14. इस प्रकार यह एक राष्ट्र की उचित सम्मान पाने में ऐतिहासिक असफलता का अध्ययन है। बुर्जुआ साथ ही साथ वर्ग की अपर्याप्तता के कारण उपनिवेशवाद पर निर्णायक विजय के नेतृत्व में असफलता। यह उस असफलता का अध्ययन है जो औपनिवेशिक भारत के इतिहास-लेखन की केन्द्रीय समस्या बनाती है।

15. आधुनिक भारतीय इतिहास-लेखन का अभिजात्यवाद कई और लोगों विद्यार्थियों, शिक्षकों और लेखकों द्वारा गलत माना गया एक अवासदजनक तथ्य है।

भारतीय जनसंख्या की एक विशेष श्रेणी के रूप में उपाश्रितों की ऐसी व्याख्यात्मक पहचान ने न केवल उत्तर उपनिवेशवादी अध्ययन के क्षेत्र को एक नया भावी क्षेत्र दिया अपितु 'तीसरी दुनिया' के लोगों और उनके अस्तित्व उत्तरजीविता और अनुक्रम को परिभाषित करने वाली सामाजिक-सांस्कृतिक राजनीति की अवस्था उपलब्ध कराई। उपाश्रित अध्ययन के साथ उत्तर-उपनिवेशवादी विमर्श ने न केवल अपना कार्यक्षेत्र और उपयोग बढ़ाया बल्कि सैद्धांतिक और व्यावहारिक दोनों तौर पर अपने पूर्वरूप में नए आयाम भी जोड़े।

12.3 उपाश्रित साहित्य का परिचय

उपाश्रित साहित्य क्या है? भारतीय और गैर-भारतीय लेखकों के द्वारा भारत की उपेक्षित आबादी के बारे में लिखा गया है। जिसमें दलित, आदिवासी और हाशिए पर पड़े अन्य लोग आते हैं। यदि उपाश्रित समुदाय के साहित्यिक निरूपण को दृष्टि से देखा जाए तो भारतीय साहित्यिक इतिहास के पिछले दो दशक काफी महत्वपूर्ण रहे हैं। दलित साहित्य, आदिवासी साहित्य और अल्पसंख्यक समुदाय अध्ययन जैसे क्षेत्र, साहित्य और सांस्कृतिक अनु ाासन में नए अध्ययन क्षेत्र के रूप में उभरे हैं। यद्यपि औपनिवेशिक काल से ही देशी भाषाओं के लेखकों और साथ ही भारतीय अंग्रेजी लेखकों की कई साहित्यिक रचनाओं के विषय उपाश्रित रहे हैं तथापि विषय के रूप में उपाश्रितों के साहित्यों के समूह की पहचान तथा वर्गीकरण हाल ही के इतिहास की घटना है।

उपाश्रित साहित्य दो भागों में बांटा जा सकता है : प्रथम उन लेखकों द्वारा लिखा गया साहित्य जो स्वयं हाशिए अर्थात् सदानुक्रमिक सामाजिक व्यवस्था के खास निम्न वर्गों से संबंध रखते हैं ऐसे लेखक जो हाशिए पर के लोगों के इतिहास-लेखन, शोषण के क्रूर असमानता और अन्याय से सीधे तादात्म्य स्थापित हों। द्वितीय कथित 'बाही लोगों' द्वारा लिखा गया साहित्य जो या तो उच्च मध्यवर्ग से है या ब्राह्मण है। ये लेखक उपाश्रितों के बारे में या तो मात्र कल्पना से या मन में बैठे विवके या उपाश्रितों के इतिहास और अस्तित्व की अवस्था से सीधे अनुभव

के कारण लिखते थे। मुल्कराज आनंद, राजाराव और आर.के. नारायण जैसे भारतीय अंग्रेजी लेखकों ने अपने लेखन में उपाश्रित जीवन और मुख्यधारा के साथ उनके भिड़न्त को चित्रित किया है। ओम प्रका ा वाल्मीकि और महा वेता देवी जैसे लेखकों ने अपने साहित्यिक पाठों में उपाश्रित जीवन का चित्रण सबसे बढ़िया संभाव्य तरीकों से किए हैं। ये अपने पाठों में उपाश्रित इतिहास-लेखन हाशिए की जनसंख्याओं (उदाहरण के लिए दलित और आदिवासियों) पर मुख्यधारा के अत्याचार और बचे रहने के लिए उनके संघर्षों को अभियंजित करते हैं।

जातिमुक्त समाज के हिमायती लेखक देश के विभिन्न भागों से आते हैं और ज्यादातर ने आत्मकथात्मक शैली में लिखा। शायद सिर्फ इस वजह से कि निम्न सामाजिक स्थिति का उनका पहचान और अनुभव उपाश्रित प्रतिनिधित्व हासिल करने का सर्वाधिक प्रभावकारी माध्यम समझा जाता था। ज्योतिबा फूले उपाश्रित चित्रण के प्रारंभिक पथ प्रदर्शकों में से एक हैं जो कि वात्यसतह से आते थे और उपांतिक जनसमूह के दुर्द ाा को उच्चारित करते हैं। ए. माधवइया ने जीवनी के रूप में 1908 में 'थील्लाई गोविंदन' उपन्यास की रचना की जिसका बाद में दिनमनी करीथालयाम के द्वारा 1944 में तमिल में अनुवाद किया गया। तेलगु में रचित टी. सूर्यनारायण का हिमावती (1913) तथा वेंकट पर्वते वर कावलु का दो खण्डों में रचित मातामंदिरामु जैसे उपन्यास भारत में हरिजनों या निम्नजाति की समस्याओं तथा उनके अधिकारों पर केंद्रित कुछ प्रारंभिक दौर की साहित्यिक तियों में माने जाते हैं। नारायण गुरु (1856-1929) ने तीन भाषाओं तमिल, संस्कृत और मलयालम में लिखा और केरला के अनेक उपजातियों में बंटे एझावा समुदाय को सामाजिक तथा नैतिक उन्नति की दिशा में प्रेरित किया। नारायण गुरू के अनुयायी कुमार आसन ने अपने क्रांतिकारी काव्य खासकर 1919 में रचित सिंहनादम्, दुरावस्था (1922), चण्डाल भिकझुकी (1922) और करुणा (1923) जैसी तियों में जाति अनुक्रम के मुद्दे को उठाया है। डी.आर वेन्दरे के कन्नड़ नाटक उद्धार (1932) और टैगोर रचित चंद्रालिका निम्न जातियों के धार्मिक आधार को दर्शाने वाली कृतियां हैं।

1920, 30 और 40 के दशकों में जातीग्रस्त वातावरण अथवा समाज में प्रेम और विवाह के विषय को लेकर काफी बड़ी संख्या में वृतांतों की रचना हुई। मरइमलई अदीगल के तमिल उपन्यास कोकिलम्पल कटिटंकल (1921) में ब्राह्मण नायिका और गैर-ब्राह्मण लड़के के प्रेम को चित्रि किया गया है। पी.सी. मुदलियार ने तमिल में पिरामान्नम् कुहिरानम् अल्लतु परिहार (1933) नाटक लिखा। जिसमें गैर-ब्राह्मण लड़की और ब्राह्मण लड़के के बीच विवाह को दिखाया गया है। योगानन्द झा के चर्चित मैथली उपन्यास भलमानुस (1944) जाति पुर्वाग्रह की वजह से कुंठित प्रेम के प्रतिनिधिक विषय को लेकर लोगों की प्रतिक्रिया का एक उदाहरण है। (दास 1995:308) ए.के. कोलहतकर मामा वरेरकर बिहल रणजी शर्डे जैसे लेखकों ने अपने नाटकों और उपन्यासों में जाति-व्यवस्था के विषय पर मानवीय समीक्षा की है।

उन्नवा लक्ष्मीनारायण के तेलगु उपन्यास मलापल्लि (अघुतग्राम 1922) हरिजन परिवार के जीवनवकृत इसके सदस्यों की व्यथा, गाँधीवाद को लेकर द्वन्द्व, 'क्रांतिकारी कार्यनीति' के तरफ उनके झुकाव और आखिरकार संगठित मजदूर आंदोलन से उनके जुड़ाव के बारे में सबसे बड़े दस्तावेजों में से एक माना जाता है। (वही : 310) कुवेम्पु के जलगार (1928) और एम.आर. श्रिवासमूर्ति के नागरिक, अछुतों की सामाजिक, आर्थिक समस्याओं के प्रबल आदर्शवाद से प्रेरित एक सफाईकर्मी के जीवन को चित्रित करता है। ये दोनों ही कृतियां कन्नड़ में हैं।

डोम, चमार, मोची इत्यादि निम्न जाति के वि .टता के निरूपणों को उत्तरी और उत्तरी-पूर्वी क्षेत्र के साहित्यिक पाठ में व हद या गौण चरित्र के रूप में चित्रित किया गया है। ताराशंकर का उपन्यास 'कवि' (1942) में एक अछूत नेताई जो डोम समुदाय से है, उसकी दुर्दशा तथा उसके उत्थान का उल्लेख है और यह उपन्यास ब्राह्मणों द्वारा डोम समुदाय के लोगों के साथ होने वाले वर्ताव को लेकर किए जाने वाले सवालों की महत्वपूर्णता पर सवाल उठाता है। 1940 के दशक में ऐसे कई उपाश्रित आख्यानों में हमें उन नायकों का जिक्र मिलता है जो भद्दे इतिहास-लेखन से उभरते हैं तथा ब्राह्मणों और अन्य उच्च जातियों के खिलाफ आवाज उठाता है। इस तरह की एक घटना याकांक्षी के तोतीयुत्तेमकन (1947) में पाई जाती है। जो केरल के छोटे शहर में अविच्छिन्न अमानुाकि स्थिति में मल ढोनेवाली तीन पीढ़ियों की कहानी है। (वही : 315) जिसमें चुदल्लमुहु और उसका बेटा मोहन्न अपनी-अपनी पीढ़ी और समय में विरोध का रास्ता अपनाता है।

मुलकराज आनंद और राजाराव जैसे भारतीय अंग्रेजी लेखकों ने अपनी रचनाओं में निचली जातियों के अमानविय शोषण और दुर्दशा को उजागर किया है। अछूत में हम देखते हैं कि इस विषय को बिल्कुल सीधे-सीधे और भड़काऊ तरीके से पेश किया गया है। जहां उस दोहरेपन को विशिष्टता पूर्वक दर्शाया गया है जो सामाजिक व्यवस्था इसके पूर्वग्रहों तथा शोषितों के प्रति उच्च जातियों के रूढ़िवादी रवैये की जटिल बना देता है। बंग्ला उपन्यासकार और लघुकथा लेखक शरतचंद्र चट्टोपाध्याय की कुछ रचनाओं में भी जाति समस्या को प्रमुखता से दर्शाया गया है। उनकी कहानी अभागीर स्वर्ग में हिन्दु अनुष्ठानों पर निचली जातियों के अधिकारों पर सिर्फ उच्च जाति के हिन्दुओं का वर्चस्व माना जाता है। उस पर सवाल खड़े करती है।

मुं ाी प्रेमचंद अपने बहुत से लेखन में निम्न जातियों के जीवन और अस्तित्व पर प्रश्न खड़े करते हैं। उनका सेवासदन डोम के विषय में प्रश्न खड़ा करता है जिसे हिन्दु 'जाति (समुदाय) में जानवरों से भी बुरा व्यवहार किया जाता है' यद्यपि 'कर्मभूमि' 1932 तिलक्षण यर्थाथवादी रूप में समन मुद्दे को उठाता है। प्रेमचंद के दूसरे लेखने 'सिर्फ एक आवाज' (1913), सुंदर (1925), घातवाली (1929), गोदान सदगति (1930), 'दूध का दाम' और 'ठाकुर का कूआं' परवर्ती रूप में उपाश्रितों की दुर्द ाा को चित्रि करती है। उच्च वगीर्य कुलिनों की श्रेठता और उसके प्रभुत्व की प्रेमचंद द्वारा व्यंगात्मक रूप में कठोर आलोचना इन सभी सु ाल्पित कृतियों में स्पष्ट रूप से व्यक्त होती है। इनमें बहुत-सी रचनाओं का अनुवाद अंग्रेजी और दूसरे आधुनिक भारतीय भाषाओं में हुआ है।

जहां प्रेमचंद ने एक तरफ डोम, चमार अछूत और भिखारियों तथा दूसरी तरफ जमींदारों, ठाकुरों और संयासियों जैसे का पर्दाफा ा किया है। वहीं महा वेता देवी ने एक तरफ भारत के विभिन्न भागों में रहने वाले आदिवासी समुदायों और दूसरी तरफ तहसीलदारों, ठेकेदारों, जमींदारों तथा राज्य के शक्ति केंद्रों के बीच के प्रखर विरोधों को अनवरत रूप से उद्घाटित करने का प्रयत्न किया है। महा वेता देवी की सक्रियतावादी लेखन जिसकी शुरुआत उनकी अपनी बांग्ला पत्रिका वर्तिका से हुई। उनके लेखन का दायरा संभवतः सबसे बड़ा है। जिसमें प्रतिरोध के दस्तावेज परचे सरकारी कार्यालयों तथा नौकर ााहों को लिखे गये पत्र, सामाजिक व राजनीतिक पत्रिकाओं तथा समाचार पत्रें में लेख तथा जनमंचों पर आयोजित वार्ताओं में दिए गए साक्षात्कार सभी कुछ शामिल है। और सबसे महत्वपूर्ण है भारत की आदिवासी जनसंख्या के इतिहासवृत की झलक वाला उनका प्रभावशाली राजनीतिक कथा साहित्य जिसके लिए उन्हें आज मुख्य रूप से जाना जाता है।

महाश्वेता देवी के साथ गायत्री चक्रवर्ती स्पीवॉक की साझेदारी ने अपने आप में लगभग एक-एक संस्था स्थापित कर ली है। ये अनुवादों के आसपास लेखक व अनुवादक दोनों की अहम् परिस्थितियों का स्थान निर्धारित करने तथा जिस प्रकार ये अनुवाद उपाश्रित अध्ययन विमर्श के अंग बने हैं उसका स्थान निर्धारित करने द्वारा समेकित है। महा वेता देवी का कथा साहित्य उपाश्रित आंदोलन पक्ष के प्रस्तुतीकरण चित्रण का एक प्रतीकात्मक उदाहरण है। उनके मामले में उपाश्रित, आदिवासी है और कई अवसरों पर उनकी उपाश्रित विषय स्त्रियां हैं। इस प्रकार उनके उपाश्रित विषयों की दो पहचानें हैं। पहली शोबोर व अन्य आदिवासी समुदाय जो 'चिट्टी मुंडा एबोंग तार तीर' (गायत्री स्पीवॉक द्वारा चिट्टी मुंडा एण्ड हिज ऐशे के रूप में अनूदित) तथा आरोग्य अधिकार (दि राइट्स ऑफ दि फारेस्ट) जैसी महा वेता देवी की कहानियों में विषय है। दूसरी वाली श्रेणी में सभी ने तीन भिन्न परिप्रेक्ष्यों से स्त्री के मिणयिक प्रश्न को स ाक्त रूप से उठाया है। उत्तर उपनिवेशवादी आलोचक गायत्रि चक्रवर्ती स्पीवॉक ने द्रोपदी और स्तनदायिनी के अंग्रेजी अनुवाद 'द्रोपदी' व 'ब्रेस्ट गिवर' नाम से किए जो स्पीवॉक की ही 'इन अदर वर्ड्स : एस्सेज इन कल्चरल पॉलिटिक्स' (1987) नामक रूटलेज से प्रकाि ात पुस्तक में सामने आए। इससे महा वेता देवी को अंतर्राट्रीय मंच पर पहचान मिली। बाद में उनकी तियों ये अंग्रेजी में अनुवाद न केवल गायत्रि स्पीवॉक द्वारा अपितु बहुत सारे अन्य अनुवादकों जैसे समिक बंदोपाध्याय, कल्पना वर्धन, शर्मिष्ठा दत्ता गुप्त, सागरी व मंदिरा सेन गुप्ता, इप्सिता चंद आदि द्वारा भी किए गए।

12.4 अनुवाद और सबल्र्टन अध्ययन

उपाश्रित और उपाश्रित साहित्य के बारे में जानने के बाद हम इस अध्याय में चर्चा करेंगे कि कैसे उपर्युक्त सभी बातों से अनुवाद जुड़ा हुआ है। जैसाकि हम जानते हैं अनुवाद शैक्षिक। साहित्यिक क्षेत्रों में सामाजिक और सांस्कृतिक घटनाओं को प्रस्तुत करने का एक सशक्त माध्यम है। यह एक लाभदायक साधन है, जिसके द्वारा

एक (स्त्रत) पाठ या साहित्यिक समूह को एक विदेशी श्रोता या एक बड़े मंच पर या कम से कम एक नवीन पाठक क्षेत्र में प्रस्तुत किया जा सकता है जिससे स्रोतपाठ तथा साहित्य समूह को एक व्यापक रूप में मान्यता मिलती है। यह स्पष्ट है कि अनुवाद एक पाठ को पाठकगण के लिए 'उपलब्ध' और 'सुलभ' बनाता है जिस स्रोतभाषा और संस्कृति से पाठक का कोई सीधा संबंध नहीं होता है। अतः अनुवाद दो भिन्न जीवन, भाषा और संस्कृति की धाराओं में सेतु बनाता है और उनके बीच के अंतर को पाटता है।

भारत में पुनः प्रस्तुतीकरण/प्रतिनिधित्व की प्रक्रिया के रूप में अनुवाद और उपाश्रित अध्ययन का परिचय हाल ही की घटना है। यह लगभग 1980 के दशक में हाशिए से कुछ साहित्यों के मुख्यतः अंग्रेजी में अनुवाद से प्रारंभ हुई। उपाश्रित लोगों और उनकी सामाजिक सांस्कृतिक दशाओं को उनके इतिहास-लेखन संबंधित मंचों पर चित्रित करती साहित्यिक कृतियों की तुलना में यद्यपि कम अनुपात में जाना गया है। उपाश्रित पाठों के वर्णन विद्वानों द्वारा किए गए विरल पाठ विषयक और ऐतिहासिक आलोचनाओं तथा इस प्रकार के पाठों के अंग्रेजी व अन्य भारतीय भाषाओं में छुटपुट अनुवादों में अभिव्यंजित होते हैं। विशेष तौर पर पिछले दो दशकों में इस पर अगले खंड में चर्चा की जाएगी।

12.4.1 उपाश्रितों का अनुवाद

ज्हां तक 'उपाश्रितों के अनुवाद' पर और उसके इर्द-गिर्द घूमते साहित्य का संबंध है, बड़े पैमाने पर अभी तक कुछ ही प्रयास किए गए हैं। यह दो स्तरों पर हुआ है। पहला अंग्रेजी तथा आधुनिक भारतीय भाषाओं में उपाश्रित पाठों के अनुवादसा के रूप में और दूसरा इस प्रकार के पाठों तथा उनके अनुवाद पर आलोचनाओं, पुस्तक समीक्षाओं व अन्य विद्वतापूर्ण प्रका ानों के रूप में। प्रो. शिशिर कुमार दास ने अपनी पुस्तक 'हिस्ट्री ऑफ इंडियन लिटरेचर 1911-1956' में 'दि नैरेटिब्स ऑफ सफरिंग : कास्ट एंड दि अंडर प्रिविलेज्ड' पर एक अध्याय समर्पित किया है। इसमें उन्होंने निम्न जाति और उपाश्रितों की ऐसी ही अन्य श्रेणियों द्वारा व उनके विषय में लिखे साहित्यों की विस्तृत व्याख्या दी है। इसके साथ ही उन्होंने भारत में उपाश्रित साहित्य के निर्माण में बहुत कुछ जोड़ने वाले बदलते हुए सामाजिक-राजनैतिक प्रतिमानों के विवरण भी दिए हैं।

कथा, साहित्य अकादमी, सीगल बुक्स और ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस जैसे प्रका ान ग हों ने संपूर्ण भारत में विभिन्न हाशिए के समुदायों से लेखकों व उनकी तियों की व्यापक श्रेणी की चुनाव से उपाश्रित पाठों के अनुवादों को प्रोत्साहन देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। पिछले दो दशकों से कथा ने अनुवादकों, आलोचकों और विद्वानों को उपाश्रित साहित्यिक तियों मुख्य रूप से लघु कथाओं के चयन, अनुवाद और आलोचना से संबंधित कार्यों में लगा रखा है। इस प्रकार एक व्यापक मंच पर इस साहित्य की ओर ध्यान आकर्षित किया जा रहा है। सीगल बुक्स निरन्तर महा वेता देवी की कृतियों के अंग्रेजी में अनुवाद प्रकाशित कर रहा है। आज तक महा वेता देवी की पंद्रह से अधिक कृतियों के अनुवाद सीगल बुक्स से प्रकाि ात हो चुके हैं।

2002 में कथा ने 'ट्रांसलेटिंग कास्ट' का प्रका ान किया। यह अपने-अपने क्षेत्रों से संकलित कहानियों के अनुवाद और उनकी आलोचनाओं के साथ प्रकाशित हुए चार समेकित खंडों में से एक है (अन्य तीन ट्रांसलेटिंग जेंडर, ट्रांसलेटिंग डिजायर और ट्रांसलेटिंग पॉवर है)। यह 'उपाश्रितों के अनुवाद' नामक क्षेत्र में एक नयी/लीक से हटकर प्रारंभिक सामूहिक उद्यम है। इस खंड के संपादक तपन बसु द ढ़तापूर्वक कहते हैं कि इस प्रकास का एक शैक्षणिक लक्ष्य और कार्य है। 'यह, जाति के मुद्दे और समकालीन भारतीय साहित्य में उसके पाठ विषयक चित्रण को भारतीय तथा विदेशी विश्वविद्यालयों की कक्षाओं में लाने का प्रस्ताव करता है। ऐसा जाति के पाठों के अंग्रेजी में अनुवाद द्वारा किया जाना चाहिए।' (बसु 2002 : 2)

यह संकलन जाति के बारे में वर्णनों से बना है जो संपादक के अनुसार 'स्वयं में ही अनुवाद के कार्य में संलग्न है - सांस्कृतिक विम ों के वर्गीकरण के अंत में एक सामाजिक संस्था के रूप में जाति का अनुवाद' (वही)। इस खं डमें सात भिन्न भारतीय भाषाओं यथा असमिया, बांग्ला, हिन्दी, कन्नड़, मलयालम, मराठी व तमिल की जाति के विषय पर आठ कहानियां हैं। 'इसका उद्दे य संपूर्ण भारतीय साहित्यिक क्षेत्र से जाति विषय के विवेचन का अध्ययन करने के लिए खाका तैयार करना है।' ट्रांसलेटिंग कास्ट में जाति के विषय पर साक्षात्कार, व्याख्यात्मक ग्रंथ-सूचियों जैसे 'संदर्भ पाठों' की ब हद श्रेणी है। ये अनु ाासनों विधाओं और दृष्टिकोण के परे फैले हुए हैं जो अकादमिक क्षेत्रों के बाहर भी पाठकगणों तक इसकी पहुंच को सुविस्तृत कर सकते हैं।

ओम प्रकाश बाल्मीकि का 'जूठन' प्रेमचंद का 'गोदान' महा वेता देवी की उपर उल्लिखित कृतियां, ये सभी तथा इसी प्रकार के कई और स ाक्त उपाश्रित पाठ अंग्रेजी में तथा कई विभिन्न (आधुनिक) भारतीय भाषाओं में प्रस्तुत किए गए हैं। अनुवादकों की प्रस्तावना, आमुख, परिशिष्टों और कई अवसरों पर अनुवादकों के उपसंहार जैसी संलग्न सहायक सामग्री के साथ ये अनुवाद प्रस्तुत होते हैं। महा वेता देवी के साथ गायत्री चक्रवर्ती स्पीवॉक की साझेदारी ने अपने आप में लगभग एक संस्था स्थापित कर ली है। ये अनुवादों के आसपास लेखक व अनुवादक दोनों के उद्दे यों की स्थिति तथा जिस प्रकार ये अनुवाद उपाश्रित अध्ययन विमर्श के अंग बने हैं, उसका स्थान निर्धारित करने द्वारा समेकित हैं।

स्पीवॉक के अति अभिन्नदित 1988 के निबंध ''कैन दि सबअल्टर्न स्पीक?'' ने वे प्रश्न उठाए जिन्हें आज हम उपाश्रितों के बोलने के अधिकारों और स्वतंत्रता के संबंध में संस्थापक प्रश्न मानते हैं। अर्थात् अपनी आवाज उठाने, अपनी दुर्दशा साफ कहने वह कहना जो वो कहना चाहते हैं, जैसे प्रश्न। स्पीवॉक प्रश्न करती हैं, ''किस वाक-चेतना के साथ उपाश्रित बोल सकते हैं? फिर भी उनकी परियोजना भारतीय राष्ट्र की चेतना के विकास का पुनर्लेखन है।'' स्त्रियों के प्रश्न के साथ उपाश्रितों की अवस्था के अन्वेषण का यह मार्क्सवादी दृष्टिकोण, गुहा व अन्य के उपाश्रित अध्ययन विमर्श के साथ जुड़ा हुआ आया (सबअल्टर्न स्टडीज खंड 1) यह स्पीवॉक के महा वेता देवी की तियों स संबंध द्वारा और मजबूत हुआ, न केवल अनुवाद के साधन द्वारा अपितु महा वेता देवी की कृतियों की उनमें चित्रि मजदूरों की, स्त्रियों की और धनी जमींदारों की उनकी अपनी व्यक्तिपरक आलोचनाओं द्वारा भारत की उपाश्रित जनसंख्या के पास कभी बोलने का अधिकार, अपनी संवेदन ीलताओं, इच्छाओं, आशाओं व आकांक्षाओं को स्पष्ट कहने का अधिकार नहीं रहां उपाश्रितों की न कभी सुनी गई और न अब सुनी जाती है। उनके बोलने का कोई महत्व नहीं है। उनके पास मुख्यधारा द्वारा उपभोग की जाने वाली प्रसन्नता व सुख-साधन का कोई अधिकार नहीं है। उपाश्रितों को बोलने ही नहीं दिया जाता क्योंकि यह आवाज मुख्यधारा की शक्ति को हिला सकती है। इस भय के कारण ही उपाश्रित हाशिए पर धकेले, वर्गीकृत, शोषित, चिरस्थायी बंधुआ मजदूर के रूप में प्रयोग किए जाते हैं और सदा एक अंतर से देखें व व्यवहार किए जाते हैं। महाश्वेता देवी के कथा-साहित्य ने यह सब और इससे भी अधिक चित्रि किया है। महाश्वेता देवी के कथा-साहित्य का स्पीवॉक द्वारा अनुवाद और आलोचनाओं ने आदि से अंत तक ऐसे प्रस्फोर दिए हैं।

12.4.2 अनुवादक की भूमिका

अनूदित पाठ के स जन में भूमिका निभाने वाले अन्य तत्वों जैसे मूलपाठ लेखक प्रका ान गृह, लक्ष्यभाषा इत्यादि के साथ-साथ अनुवाद के लगभग सभी मामलों में अनुवादक एक निर्णायक भूमिका निभाता है। उपाश्रित पाठ और उनके अनुवाद के मामले में गायत्री चक्रवर्ती स्पीवॉक की एक अनुवादक के रूप में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका है। उनके द्वारा किए गए महाश्वेता देवी की कृतियों के अंग्रेजी अनुवादों ने उपाश्रित अध्ययन, उत्तर-उपनिवेशवादी/'तीसरी दुनिया' के अध्ययन, अल्पसंख्यक अध्ययन, जेंडर स्टडीज और निसंदेह अनुवाद अध्ययन के लिए भी नए परिदृश य खोले हैं।

उपाश्रित पाठों के मामले में अनुवादक मूलपाठ अथवा उसके लेखक से अधिक आत्मनिष्ठ संबंध रखता है। इस प्रकार के अधिकतर मामलों में अनुवादक शोषितों की संवेदनशीलताओं, हाशिए की जनसंख्या के उद्देश्यों और उनकी अवस्था व इतिहास-लेखन से प्रेरित देखा गया है। ऐसे मामलों में अनुवादक अनुवाद करने की अपेक्षा पुनः सृजन के प्रति उन्मुख रहता है। अर्थात् अनुवादक अपनी इच्छानुसार वस्तुओं/भावों को परिवर्तित करने की सृजनात्मक स्वतंत्रता लेता है।

12.5 विमर्श और उपाश्रितों का अनुवाद

अनुवाद सिद्धांत पर अपने पूर्व पाठ्यक्रमों में हम अनुवाद के क्षेत्र में मुख्य विम ों के बारे में जानकारी प्राप्त कर चुके हैं। क्या अब आप इन अनुवाद विमर्शों में उपाश्रितों के अनुवाद की समस्याओं को निर्धारित कर सकते हैं? जब हम समकालीन अनुवाद विमर्शों में उपाश्रितों के अनुवाद के मुद्दे को अवस्थित करते हैं तो पाते कि यह उन

समस्याओं के केन्द्र में है जिनसे ये विमर्श जुड़े हुए हैं। यह अनुवाद के प्रति दृष्टिकोण में आए परिवर्तनों से भी संबंध रखता है। उदाहरण के लिए एक अनुशासन के रूप में अनुवाद अध्ययन ने भाषिक व अर्थगत के साथ-साथ सांस्कृतिक मुद्दों का भी सामना किया है। अनुवाद के इर्द-गिर्द घूमते आदिकालीन प्रश्नों में से एक यह भी है कि अनुवाद पठनीय/आकर्षक होना चाहिए या मूल के जैसा होना चाहिए? भाषाविज्ञान के क्षेत्र से अनुवाद के विद्वान अनुवाद में अधिकतर भाषिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं जबकि (अनुवाद अध्ययन के) 'सांस्कृतिक पक्ष' के सिद्धांत शास्त्री और विद्वानों में अनुवाद में संस्कृति और उसके तत्वों के महत्व के बारे में विस्तारपूर्वक बताया है।

चूंकि उपाश्रित अध्ययन लगभग पिछले दो दशकों की घटना है, इसलिए उपाश्रित पाठों के अनुवाद में सबसे प्रासंगिक माने गए मुद्दे अधिकतर संस्कृति और उसके तत्वों से संबंधित है। निस्संदेह मुहावरों का प्रयोग, समस्त शब्दावली व अनुसरित वाक्य संरचना जैसे भाषिक विषयों तथा सबसे महत्वपूर्ण रूप में जहां अर्थ एक जटिल क्षेत्र समझा जाता है, उन खास बिन्दुओं में किए गए अर्थगत चयन पर अनुवादक सचेतन चुनाव करते और पक्ष लेते हैं। फिर भी अनुवाद के लिए लेखक का चयन, पाठों का चयन सांस्कृतिक तत्वों जैसे रीतिरिवाज, खानपान, धार्मिक प्रथाओं मतों, लोकोक्तियों का अनुवाद जैसे मुद्दे और संभवतः सबसे महत्वपूर्ण पहचान (जाति, वर्ग, लिंग आदि) के इर्द-गिर्द घूमते मुद्दे तथा अनुवादक की अपनी पहचान इन सभी ने उपाश्रित अनुवादों पर अपना प्रभाव छोड़ा है।

कथा के 'ट्रांसलेटिंग कास्ट' खंड की भूमिका में तमन बसु कहते हैं, ''हालांकि यह जानते हुए कि स्थानीय साहित्यों के उनके सीमित परिवे ा के बाहर और एक वैि वक पाठकगण के सामने प्रस्तुतीकरण में अनुवाद की प्रक्रिया उतनी ही महत्वपूर्ण है जितनी कि यह अत्यावश्यक है, फिर भी प्रत्येक कहानी का भायकार पाठकों को देशज बोलियों की विशेषताओं को मानक अंग्रेजी में अनुवाद करने में सम्मिलित आधिपत्यात्मक तथा समरूप बनाने की प्रवृत्तियों के विरुद्ध सतर्क करता है।'' (बसु 2002)

हमें यह ध्यान में रखने की आवश्यकता है कि अनुवाद और उपाश्रितों के साहित्यिक अध्ययन की तुलना में हमारे पास दे अंतर्संबंधित मुद्दे अर्थात् (क) अपाश्रितों का अनुवाद तथा (ख) उपाश्रितों के साहित्यिक पाठ का अनुवाद है। अभी तक हुई हमारी चर्चा से यह स्पष्ट है कि अनुवादक और अनुवाद उपाश्रितों के विषय में सक्रिय राजनैतिक भूमिका अदा करते हैं। उपाश्रित अध्ययन समाज में विद्यमान प्रभुत्व के रूप और व्यवहार के उद्घाटन पर आधारित है इसलिए अनुवाद समाज में विद्यमान प्रभुत्व के रूप और व्यवहार के उद्घाटन के बड़े प्रश्न से बंधा हुआ है।

परिणामस्वरूप, अनुवादक पाठ में जो चयन करता है और अनुवाद के दौरान पाठ में उनके द्वारा जो हस्तक्षेप किया जाता है, उसे समाज में प्रचलित प्रभुत्व के उद्घाटन और विरोध की एक बहुत बड़ी राजनीतिक के भाग के रूप में देखा जाता है।

12.6 सारांश

इस इकाई में हमने एक विमर्श के रूप में उपाश्रित अध्ययन, भारत में लिखे उपाश्रित साहित्य व उसके अनुवाद के प्रयासों तथा उपाश्रित अध्ययन के नाम व मान्यता को विस्तृत करने में अनुवाद की भूमिका पर चर्चा की है। हमने समकालीन अनुवाद विम र्श में उपाश्रितों और उपाश्रित पाठों के अनुवाद का मुद्दा अवस्थित करने का भी प्रयास किया है।

12.7 अभ्यास के लिए प्रश्न

1. उपाश्रित अध्ययन के मुख्य लक्षण क्या है?
2. उपाश्रित साहित्य क्या है? उपाश्रित साहित्य के कम से कम चार उदाहरणों का जिक्र करें।
3. उपाश्रित पाठ के अनुवाद पर ऊपर दिए गए दो मुख्य तर्कों का उल्लेख कीजिए।
4. किस प्रकार गायत्री चक्रवर्ती स्पीवॉक के अनुवाद के विमर्शों से संबंधित हैं?

12.8 शब्दावली

12.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. मैपिंग सबअल्टर्न स्टडीज एंड द पोस्टकोलोनियल; (संपा.) विनायक चतुर्वेदी; लंदन एंड न्यूयार्क : वरसो; 2000।
2. ए हिस्ट्री ऑफ इंडियन लिटरेचर 1911-1956; शिशिर कुमार दास; नई दिल्ली : साहित्य अकादमी; 1995।
3. ठमेजनरी मैप्स अदूदित गायत्री चक्रवर्ती स्पीवॉक; महाश्वेता देवी; कलकत्ता; 1993।
4. सबअल्टर्न स्टडीज : राईटिंगस ऑन साऊथ एशियन हिस्ट्री एंड सोसाइटी; (संपा.) रनजीत गुहा; दिल्ली : ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस; 1982।
5. माकर्सिज्म एंड द इंटरप्रटेशन ऑफ कल्चर्स, पुस्तक कैरी नेलसन और लॉरेन्स ग्रोसबंर्ग द्वारा संपादित लंदल मैकमिलन 1988 में गायत्री चक्रवर्ती, स्पीवॉक के निबंध ''कैन द सबअल्टर्न स्पीक''।

इकाई 13 भाषा आंदोलन और अनुवाद

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 स्वतंत्रता के बाद भाषाई राज्यों का संगठन

13.3 अनुवाद एवं स्वतंत्रता के बाद राज्यों की भूमिका

13.4 अनुवाद एवं भारतीय प्रकाशन की भूमिका

13.5 भारतीय अनुवाद एवं अंतरराष्ट्रीय प्रकाशन

13.6 सारांश

13.7 अभ्यास के लिए प्रश्न

13.8 शब्दावली

13.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

13.0 उद्देश्य

- इस इकाई का उद्देश्य आपको एक स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में स्वयं को स्थापित करने में भारत के समक्ष आई जटिलताओं के बारे में जानकारी प्रदान करना है;
- हम भारतीय राज्यों को भाषाई आधार पर मान्यता देते हुए एक राष्ट्र के रूप में भारत के निर्माण की प्रक्रिया में आने वाली राजनीति के बारे में जानेंगे। स्वतंत्रता के बाद भारत के सांस्कृतिक क्षेत्रों द्वारा सामना की जाने वाली समस्याओं के बारे में भी यहाँ चर्चा की जाएगी, जो मूलतः बहुभाषिक प्रकृति के थे;
- इसके पश्चात् हम स्वतंत्रता के बाद सरकार तथा स्थानीय लोगों के बीच संवाद के लिए महत्वपूर्ण माध्यम के रूप में अनुवाद एवं भारतीय क्षेत्रीय भाषा के विकास के लिए सरकार द्वारा अपनाई गई रणनीतियों का अध्ययन करेंगे;
- इसके बाद एक शैली के रूप में अनुवाद को स्थापित करने के साथ-साथ भारत से अनुवाद में व्यापक नेतृत्व के निर्माण में भारतीय एवं अंतरराष्ट्रीय प्रकाशकों की भूमिका पर भी चर्चा की जाएगी।

13.1 प्रस्तावना

एक देश के रूप में भारत विभिन्न दृष्टिकोणों से कई भागों एवं उप भागों में विभाजित है। इसकी संस्कृति, भाषा, धर्म, इतिहास, भूगोल, जलवायु आदि विविधता को द ार्ति हैं। इसलिए भारत को अपने विभिन्न क्षेत्रों एवं लोगों को भारतीयता के अंदर एकजुट रखने में कई चुनौतियों का सामना करना पड़ा। औपनिवेशिक शासन के 200 वर्षों के कार्यकाल में इसमें कई अन्य विविधताएँ भी जुड़ गईं। हालाँकि इससे उलट उपनिवेशवाद का एक सकारात्मक पहलू यह है कि इसने भारत के बिखरे हुए लोगों को एक राष्ट्र के रूप में एकजुट किया, जो उपनिवेशवादियों के खिलाफ थे और इसके 100 वर्षों से भी कम समय के भीतर भारत एक स्वतंत्र राष्ट्र बन गया। हालाँकि, उपनिवेशवाद अपना बीज पहले ही बो चुका था। हालाँकि भारत को अपना संविधान मिल गया था, लेकिन उपनिवेशवादियों की नीतियों के कुछ प्रभाव रह गए थे, जिसके कारण भारत को भा ाा, धर्म तथा कई अन्य मामलों में अपनी पहचान के लिए कई संघर्ष करने पड़े।

इससे पहले के अध्याय में आपने पढ़ा कि उत्तर औपनिवेषिक काल में किस प्रकार भारत के साहित्यिक क्षेत्रा में 'डायस्पोरा' और 'सबअल्टर्न स्टडीज' का विकास हुआ। इस अध्याय में आपको उस राजनीति के बारे में बताया

जाएगा, जिसके कारण स्वतंत्रता के बाद राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में भाषाई संदर्भ में भारतीय राज्यों की वि .टता स्थापित हुई। इसमें इस प्रक्रिया में अनुवाद की भूमिका पर भी चर्चा की जाएगी।

भारत में भाषाई राजनीति के बारे में चर्चा के दौरान हम संक्षिप्त में उस काल के बारे में भी जानेंगे, जब औपनिवेषिक शासकों के बीच प्रशासनिक भाषा चर्चा का वि ाय थी। 2 फरवरी, 1835 को लॉर्ड मैकाले ने गवर्नर जनरल सर विलियम बेंटिक के समक्ष भारतीय शिक्षा पर अपना प्रस्ताव पेश किया, जिसे उन्होंने उसी साल सात मार्च को मंजूरी दे दी। अपने प्रस्ताव में लॉर्ड मैकाले ने संस्कृत एवं अरबी भाषा के साहित्य को पूरी तरह बेकार करार देते हुए कहा कि ये यूरोपीय पुस्तकालयों में रखने योग्य भी नहीं हैं। इसलिए उन्होंने कहा कि भारतीयों को उनकी मातृभाषा में शिक्षा नहीं दी जा सकती। इस प्रकार, गवर्नर जनरल की मंजूरी से अंग्रेजी 19वीं सदी के भारत में प्र ाासन के साथ-साथ शिक्षण के माध्यम की भाषा भी बन गई।

ब्रिटिश भारत की भाषाओं के व्यापक सर्वेक्षण *भारतीय भाषाई सर्वेक्षण* में 364 भाषाओं एवं बोलियों की पहचान की गई। यह ब्रिटिश राज की परियोजना थी, जो 1894 और 1928 के बीच भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारी जॉर्ज ए. ग्रियर्सन के दि ाा-निर्दे ा पर की गई थी। ग्रियर्सन का काम अप्रि ाक्षित क्षेत्रा कार्यकर्ताओं पर आधारित था और इसमें बर्मा, मद्रास तथा तत्कालीन रियासतों- हैदराबाद एवं मैसूर की उपेक्षा की गई। इसका परिणाम यह हुआ कि सर्वेक्षण रिपोर्ट में भारतीय राज्यों को उचित प्रतिनिधित्व नहीं मिल पाया। हालाँकि, हाल में 1991 की भारत की जनगणना के अनुसार, अलग व्याकरणीय संरचनाओं के साथ देश में 1,576 'मात भाषाएँ' तथा 1,796 'अन्य मात भाषाएँ' मौजूद हैं।

स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू जैसे राजनीतिक चिंतकों ने भारत की क्षेत्रीय भाषाओं के पक्ष में आवाज उठाई थी। उन्होंने राज्यों के भाषाई पुनर्गठन का भी समर्थन किया। हालाँकि स्वतंत्रता के बाद कई राज्यों का गठन भाषा के आधार पर हुआ और देश के कई हिस्सों में भाषाई आंदोलन भी हुए। हालाँकि, भारत में भाषाई आंदोलन का इतिहास लंबा है, जो मुगल साम्राज्य के समाप्त होने के तुरंत बाद शुरू हो गया, जब प्रशासनिक कामकाज के लिए उर्दू एवं हिंदी (देवनागरी) के इस्तेमाल को लेकर संघर्ष शुरू हुआ। इस इकाई में हम हालाँकि स्वतंत्रता से पहले के भाषा आंदोलन पर चर्चा नहीं करेंगे, जो भारत में धीरे-धीरे शुरू हो चुका था। यहाँ हम भाषा आंदोलनों पर चर्चा करेंगे, जो उत्तर औपनिवेषिक स्वतंत्र भारत में राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में सामने आया। यह इकाई निम्नलिखित उपक्षेत्रों में बटी है : 1) स्वतंत्रता के बाद भारतीय भाषाओं का विकास, 2) अनुवाद एवं स्वतंत्रता के बाद भारतीय राज्य की भूमिका, 3) अनुवाद एवं भारतीय प्रकाशन की भूमिका तथा 4) भारतीय अनुवाद एवं अंतरराष्ट्रीय प्रकाशन की भूमिका।

13.2 स्वतंत्रता के बाद भाषाई राज्यों का संगठन

स्वतंत्रता के बाद भारत सरकार ने राज्यों के पुनर्गठन का निर्णय लिया, जिसका सपना महात्मा गाँधी एवं जवाहरलाल नेहरू ने देखा था। भाषा, संस्कृति, विकास एवं एकता जैसे प्रशासनिक सुविधा के चार मौलिक सिद्धांतों पर ध्यान केंद्रित करते हुए 1953 में राज्य पुनर्गठन आयोग का गठन किया गया, जिसे एकभाषी एवं द्विभाषी राज्यों के गठन की जिम्मेदारी सौंपी गई। आयोग का गठन इस सोच के तहत किया गया कि भाषाई एकरूपता से प्रशासनिक कामकाज में सुविधा होगी। सरकार ने राज्य पुनर्गठन अधिनियम, 1956 की अनु ांसाओं को स्वीकार किया और एक बार फिर राज्यों की भाषाई समानता के आधार पर भारत का मानचित्र तैयार किया। इस क्रम में छह केंद्र शासित प्रदेशों सहित राज्यों की संख्या 27 से घटाकर 14 कर दी गई।

भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में 1950 में 14 भा ााओं को जोड़ा गया। ये असमिया, बांग्ला, गुजराती, हिन्दी, कन्नड़, कश्मीरी, मलयालम, मराठी, उड़िया, पंजाबी, संस्त, तमिल, तेलुगू एवं उर्दू हैं। उसके बाद से इस सूची का तीन बार विस्तार किया गया। पहली बार इसमें सिंधी को जोड़ा गया। दूसरी बार कोंकणी, मणिपुरी एवं नेपाली को जोड़ा गया और तीसरी बार बोडो, डोगरी, मैथिली एवं संथाली को इसमें जोड़ा गया। ये सभी भारतीय भाषाएँ आधुनिक भारतीय भाषाओं (एमआईएल) के रूप में जानी जाती हैं। इस सूची में अब भी कई भाषाओं को जोड़ा जा सकता है।

भाषाई आधार पर राज्यों के पुनर्गठन ने भा ाई पहचान के दावे को प्रोत्साहित किया, जिसके कारण देश के विभिन्न हिस्सों में कई भाषाई आंदोलन एवं प्रदर्शन हुए। इन भाषाई आंदोलनों का मुख्य कारण भाषाई अल्पसंख्यकों के अधिकारों की सुरक्षा को क्रियान्वित नहीं कर पाना था। केंद्र सरकार की आधिकारिक भाषा के रूप में हिन्दी को लागू करने के कारण भी अवांछित प्रदर्शन हुए। हाल के समय तक देश के कुछ हिस्सों में हिन्दी विरोधी प्रदर्शन होते रहे हैं।

हिन्दी विरोधी प्रदर्शन

भारतीय संविधान में 1950 में प्रावधान किया गया कि केंद्र सरकार की आधिकारिक भाषाएँ हिन्दी और अंग्रेजी होंगी। 15 साल के भीतर यानी 1965 तक केंद्र सरकार की आधिकारिक भाषा के रूप में हिन्दी को अपनाना अनिवार्य किया गया। इसके तहत, आधिकारिक भाषा अधिनियम, 1963 में कहा गया कि हिन्दी 1965 में देश की एकमात्र आधिकारिक भाषा होगी। अंग्रेजी हालाँकि 'संबद्ध अतिरिक्त आधिकारिक भाषा' के रूप में रहेगी। 10 साल के बाद संसदीय समिति को हालात पर विचार करना था और इस बारे में भी सोचना था कि यदि अन्य भाषा को जानने वालों के बीच हिन्दी ठीक ढंग से अपनी पैठ नहीं बना पाई है तो क्या अंग्रेजी का दर्जा बरकरार रखा जाएगा?

गृह मंत्रालय ने 1964 में सभी मंत्रालयों से हिन्दी को आधिकारिक भाषा बनाए जाने के संबंध में प्रगति रिपोर्ट और 1965 में हिन्दी को आधिकारिक भाषा बनाए जाने के बाद की योजना की जानकारी मांगी। गृह मंत्रालय के इस कदम के बाद 1964 के आखिर और 1965 की शुरुआत में तमिलनाडु में दंगे भड़के, जिसके कारण केंद्र सरकार को अपने रुख पर पुनर्विचार करना पड़ा। नई दिल्ली में जून 1965 में हुए सम्मेलन में गैर-हिन्दी भाषी राज्यों को आ वस्त किया गया कि हिन्दी को केंद्र सरकार और राज्यों में एकमात्र आधिकारिक भाषा के रूप में तब तक नहीं थोपा जाएगा, जब तक कि एक भी राज्य इसका विरोध करेगा।

भारत की एकमात्र आधिकारिक भाषा के रूप में हिन्दी को लागू किए जाने के खिलाफ पहला बड़ा भाषाई संघर्ष तमिलनाडु में हुआ, जो हिन्दी विरोधी प्रदर्शन के नाम से जाना गया। हिन्दी के विरोध में पहला प्रदर्शन 1937 में हुआ था, जब सरकार ने मद्रास प्रेसीडेंसी के स्कूलों में हिन्दी पढ़ाना अनिवार्य किया था। यह प्रदर्शन तीन साल तक चला और इस दौरान कई सम्मेलन, मार्च, उपवास, धरना एवं प्रदर्शन हुए। सरकार की ओर से अनुकूल जवाब नहीं मिलने के कारण दो प्रदर्शनकारियों की मौत हो गई और महिलाओं एवं बच्चों सहित हजारों लोगों को गिरफ्तार किया गया। बाद में मद्रास के ब्रिटिश गवर्नर लॉर्ड इर्सकाइन ने 1939 में कांग्रेस सरकार के इस्तीफा देने के बाद फरवरी 1940 में हिन्दी शिक्षा को अनिवार्य बनाने वाला आदेश वापस ले लिया। जैसे-जैसे हिन्दी को एकमात्र आधिकारिक भाषा बनाने का दिन (26 जनवरी, 1965) करीब आ रहा था, तमिलनाडु में हिन्दी विरोधी आंदोलन को गति मिल रही थी और इसे छात्र समूहों का भी समर्थन मिल रहा था। पहला दंगा 25 जनवरी को मदुरै में हुआ। दंगा पूरे तमिलनाडु में फैल गया और अगले दो माह तक हिंसा, आगजनी, लूट, पुलिस की गोलीबारी, लाठीचार्ज हुए, जिसके कारण करीब 70 लोगों की मौत हुई। स्थिति को नियंत्रित करने के लिए भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री ने आ वासन दिया कि अंग्रेजी तब तक आधिकारिक भाषा बनी रहेगी, जब तक गैर-हिन्दी भाषी राज्य ऐसा चाहेंगे। शास्त्री के इस आश्वासन के बाद दंगा और छात्रों का प्रदर्शन धीरे-धीरे कम होने लगा।

मद्रास प्रांत में तेलुगू भाषी समुदायों द्वारा नए राज्य की माँग से 1953 में आंध्र प्रदेश का निर्माण हुआ। 1956 में केंद्र सरकार ने मद्रास प्रेजीडेंसी और हैदराबाद रियासत के तेलुगू भाषी क्षेत्रों को मिलाकर एक अलग राज्य आंध्र प्रदेश का गठन किया। हालाँकि आंध्र प्रदेश के 80 प्रतिशत से अधिक लोग तेलुगू बोलते हैं, लेकिन अधिकतर भाँाई राज्यों की तरह कुछ संख्या यहाँ भाषाई अल्पसंख्यकों की भी है, जो उर्दू बोलते हैं और वे मुख्यतः राज्य की राजधानी हैदराबाद में रहते हैं, जहां करीब 40 प्रतिशत आबादी उर्दू बोलती है। हालाँकि 1960 के दशक के उत्तरार्द्ध और 1970 के दशक के पूर्वार्द्ध में दो अलग राज्यों के गठन के लिए दंगे हुए, लेकिन अलगाव नहीं हुआ।

मौजूदा दशक में महाराष्ट्र में हिन्दी विरोधी प्रदर्शन हो रहे हैं। 'महाराष्ट्र नवनिर्माण सेना' और 'शिवसेना' ऐसे दो बड़े राजनीतिक दल हैं, जिन्होंने हाल के समय में हिन्दी भाायिों के खिलाफ मराठी भाषा के प्रति अपना प्रेम जाहिर किया है।

भाषा अनुक्रम एवं संघर्ष

आजादी के वर्षों में भाषा से संबंधित आंदोलन उन राज्यों में हुए, जहाँ बहुत कम लोग उस राज्य की क्षेत्रीय भाषा की तुलना में अन्य भाषा बोलते थे। बड़े पैमाने पर बोली जाने वाली क्षेत्रीय भाषा के प्रभुत्व एवं चयन तथा भाषाई अल्पसंख्यकों के अधिकारों की सुरक्षा नहीं किए जाने के कारण भारत के कई राज्यों में विरोधी समूहों का गठन हुआ।

असम में असमिया को आधिकारिक भाषा घोषित किए जाने के बाद भाषाई आंदोलन हुए, जो *भाषा आंदोलन* के नाम से जाना गया। 3 मार्च, 1960 को असम के तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री बिमला प्रसाद चलीहा ने असमिया को असम की आधिकारिक भाषा घोषित किए जाने के मुद्दे पर भाषण दिया। इसके बाद पूरे क्षेत्रा में असमिया को आधिकारिक भाषा के रूप में स्थापित करने को लेकर प्रचार शुरू हो गया। इससे असम की बैरक घाटी के लोग नाराज हो गए, जो अधिकतर बांग्ला भाषी लोग थे। 16 अप्रैल, 1960 को बैरक घाटी के सिलचर में असमिया को आधिकारिक भाषा बनाए जाने की कोशिशों के विरोध में स्थानीय लोगों ने आंदोलन शुरू किया। 3 जुलाई, 1960 को प्रदर्शनकारी छात्रों पर पुलिस ने गोली चलाई, जिसमें एक असमी छात्र की मौत हो गई। इसके बाद ब्रह्मपुत्र घाटी क्षेत्र में सांप्रदायिक हिंसा भड़क गई। इस प्रकार, कुख्यात बंगाल खेड़ा आंदोलन की शुरुआत हुई, जिसका शाब्दिक अर्थ 'बंगालियों का नि कासन' है। इसका परिणाम पूरे राज्य से हजारों बंगालियों के विस्थापन के रूप में सामने आया। गैर-असमी छात्रों को विश्वविद्यालय एवं कॉलेज छोड़कर जाने के लिए मजबूर कर दिया गया। बैरक घाटी में इसका विरोध हुआ। 19 मई, 1961 को सिलचर में 11 प्रदर्शनकारियों को गोली मार दी गई, जिन्हें बाद में भाषा शहीद का दर्जा दिया गया। इस विरोध-प्रदर्शन के बाद सरकार ने असमिया को ब्रह्मपुत्र घाटी और बांग्ला को बैरक घाटी की आधिकारिक भाषा घोषित की।

मणिपुर में हुआ भाषा आंदोलन अलग प्रकृति का था। आधिकारिक रूप से 'मणिपुरी' के रूप में जानी जाने वाली 'मितीलॉन' मणिपुर की आधिकारिक भाषा है, जो राज्य में विभिन्न जनजातीय एवं गैर-जनजातीय समुदायों द्वारा सार्वजनिक भाषा के रूप में इस्तेमाल की जाती है। मुद्राशास्त्र और अन्य ऐतिहासिक सूत्रों के अनुसार, मिती भाषा ने अपनी अलग लिपि एवं व्याकरण का विकास किया।

मणिपुर में जब हिन्दुत्व आया, जो अधिकतर बंगाल से थे, तो धार्मिक सिद्धांतों के साथ बांग्ला लिपि भी साथ में आया। बाद में मिती राजा ने इस लिपि को पूर्ववर्ती मिती लिपि के स्थान पर राज्य की भाषा के लिए लागू किया। पूया नाम से जाने जाने वाले सभी पूर्ववर्ती हिन्दू धार्मिक मूलपाठ जला दिए गए। इसके बाद मितियों को 250 वर्षों से भी अधिक समय तक उनकी अपनी ही लिपि का इस्तेमाल करने से रोक दिया गया। आधुनिक समय में राज्य में मिती लिपि की पुनःस्थापना, पुनर्जीवन, विकास एवं पुनरावर्तन के लिए कोशिशें शुरू हुई। इसके बाद मिती लिपि को भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल करने तथा मणिपुर में प्राथमिक एवं उच्च शिक्षा के माध्यम के रूप में मिती लिपि को लागू करने की माँग उठी। इस आंदोलन को आंतरिक एवं बाह्य कई चुनौतियों का सामना करना पड़ा। आंदोलन को मिती भाषा के प्रति राज्य सरकार की सहानुभूति एवं 29 जनजातीय भाषाओं के प्रति उदासीनता को लेकर पहाड़ी समुदाय की उदासीनता से भी चुनौती मिली।

कुछ राज्यों में भाषा को लेकर प्रदर्शन एवं आंदोलन का इतिहास रहने के बावजूद भारतीय राष्ट्र का पुनर्गठन भाषाई आधार पर हुआ। जैसा कि पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है कि तेलुगू भाषी लोगों के कारण आंध्र प्रदेश का गठन हुआ, हालाँकि इसकी वजह से कुछ दुखद घटनाएँ हुई। 1960 में बम्बई प्रांत को गुजरात एवं महाराष्ट्र, दो राज्यों में बाँट दिया गया। पंजाब एवं हरियाणा का विभाजन 1966 में हुआ। पूर्वोत्तर भारत के राज्यों का पुनर्गठन 1970 के दशक के पूर्वार्द्ध में हुआ। इस मामले में हालाँकि पुनर्गठन केवल भाषा के आधार पर नहीं हुआ। कुछ अन्य राजनीतिक समस्याएँ भी थीं, जिनके बारे में हम विस्तृत चर्चा यहाँ नहीं करेंगे।

13.3 अनुवाद एवं स्वतंत्रता के बाद राज्यों की भूमिका

पिछले हिस्से में हमने पढ़ा कि किस प्रकार बहुभाषिक राज्यों में 'एक राष्ट्रीय भाषा' को थोपे जाने के कारण अप्रिय घटनाएँ हुईं। इस समस्या के समाधान के लिए भारत सरकार ने अगस्त 1961 में त्रि-भाषा-फॉर्मूला (टीएलएफ)

अपनाया। 'राष्ट्रीय' भाषा के रूप में हिन्दी को मान्यता देने के अतिरिक्त हर राज्य को 'क्षेत्रीय' एवं 'स्थानीय' भाषा के रूप में दो अन्य भाषाओं के चयन का विकल्प दिया गया। हालाँकि, टीएलएफ उन राज्यों में भाषा से संबंधित मुद्दों का समाधान नहीं कर पाया, जहाँ कई भाषा बोलने वाले समुदाय हैं। यह नीति सभी भारतीय भाषाओं को 'अनुसूचित' एवं 'गैर-अनुसूचित' वर्ग में विभाजित करती है। इससे भाषाई अनुक्रम का विकास हुआ, जिसमें हिन्दी को राष्ट्रीय भाषा के रूप में सबसे ऊपर रखा गया। इसके बाद 'क्षेत्रीय भाषा' का स्थान आता है, जो एक भौगोलिक क्षेत्रा विशेष में बेहद प्रभावशाली हो या जिसका प्राचीन भारत की धरोहर के रूप में एक इतिहास रहा हो। इस भाषाई अनुक्रम में सबसे निचले पायदान पर 'बोलियों' को रखा गया। हालाँकि तिब्बतो-बर्मन और ऑस्ट्रो-एशियाटिक जैसी भाषाओं को 'बोलियों' की श्रेणी में रखे जाने के कारण इन भाषाओं को बोलने वाले समुदायों में नाराजगी पैदा हुई।

प्रशासन में किसी भाषा के इस्तेमाल के कारण उस संबद्ध भाषा के विकास एवं उसे एक मानक के रूप में विकसित करने की आवश्यकता महसूस हुई। भारत ने इसके लिए केंद्रीय एवं राज्य, दोनों स्तर पर कदम उठाए। केंद्रीय स्तर पर गठित कई आयोगों एवं बोर्ड ने राज्य सरकारों द्वारा शुरू किए गए भाषाई विकास कार्यक्रमों की समीक्षा की। भारत सरकार ने भाषाई शोध एवं विकास के लिए कुछ प्रमुख संस्थानों की स्थापना भी की, जिनमें वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग (सीएसटी), केंद्रीय हिन्दी निदेशालय (सीएचडी), क़ौमी काउन्सिल बराए फ़रोग-ए-उर्दू ज़बान (नेशनल काउन्सिल फॉर द प्रमोशन ऑफ उर्दू लैंग्वेज- एनसीपीयूएल), केंद्रीय हिन्दी संस्थान (सीआईएच), भारतीय भाषा संस्थान (सीआईआईएल), सिंधी भाषा के प्रोत्साहन के लिए राष्ट्रीय आयोग (एनसीपीएसएल) प्रमुख हैं। सीएसटी ने तकनीकी शब्दावलियों, जिनमें हिन्दी एवं अन्य क्षेत्रीय भाषाओं सहित प्रशासनिक भाषा की शब्दावली भी शामिल है, का मानकीकरण सुनिश्चित करने के लिए कई परियोजनाएँ शुरू की। सीएचडी, एनसीपीयूएल तथा एनसीपीएसएल क्रमशः हिन्दी, उर्दू एवं सिंधी भाषा के विकास के लिए जिम्मेदार हैं। सीआईएच शिक्षकों एवं अधिकारियों को हिन्दी भाषा का प्रशिक्षण देता है, ताकि वे प्रशासन में हिन्दी का इस्तेमाल कर सकें।

सीआईएल मुख्य रूप से विभिन्न भाषाओं में अनुवाद परियोजनाओं एवं अन्य गतिविधियों में संलग्न हैं। इसने *अुस ति* जैसी कई बड़ी अनुवाद परियोजनाएँ शुरू की। यह परियोजना अनुवादकों एवं अनुवाद का अध्ययन करने वालों के लिए बेहद मददगार साबित हुई। इसकी वेबसाइट पर अनुवाद से संबंधित सभी तरह की जानकारियाँ उपलब्ध हैं। इसने 'ट्रांसलेशन टुडे' नाम से ऑनलाइन अनुवाद जर्नल भी शुरू किया। *कथा भारती* एक अन्य बड़ी परियोजना है, जिसे इस संस्था ने साहित्य अकादमी के साथ मिलकर शुरू किया। साहित्य अकादमी, इंडियन एकेडमी ऑफ लेटर्स है, जो भारतीय भाषाओं की 100 बेहतरीन आधुनिक कल्पनाओं (उपन्यास, लघुकथाएँ) को मुख्य रूप से अंग्रेजी में और कभी-कभी फ्रेंच, जर्मन, स्पेनिश, इतालवी तथा अन्य अंतरराष्ट्रीय भाषाओं में उपलब्ध करवाती है। इस वक्त यह संस्था राष्ट्रीय अनुवाद मिशन (एनटीएम) नाम से जानी जाने वाली परियोजना से जुड़ी है। यह ज्ञान आधारित पाठों को अनुवाद के जरिए संविधान की आठवीं अनुसूची में वर्णित सभी भारतीय भाषाओं में उपलब्ध करवाने का प्रयास है। इसका मुख्य उद्देश्य शब्दकोशों एवं पर्याय शब्दकोशों जैसे अनुवाद के गुणवत्तापूर्ण साधनों का विकास करना और अंग्रेजी तथा भारतीय भाषा, एक भारतीय भाषा एवं दूसरी भारतीय भाषा, भारतीय भाषाओं एवं बड़ी वैि वक भाषाओं के बीच म ीनी अनुवाद व मशीनी सहायता प्राप्त अनुवाद को बढ़ावा देना है।

राज्य स्तर पर कई राज्यों ने संबद्ध क्षेत्रीय भाषाओं में शैक्षणिक सामग्री की तैयारी के लिए विश्वविद्यालय एवं स्कूल स्तरीय पाठ्य पुस्तक बोर्ड का गठन किया है। कुछ राज्यों ने अपनी संबद्ध प्रशासनिक भाषा में अधिकारियों को प्र ाक्षित करने के लिए भाषा विभागों, अकादमियों, प्रशिक्षण संस्थानों की भी स्थापना की है। भाषा से संबंधित बहुत से विभाग एवं अकादमियाँ मानक पाठ्य पुस्तकों, कार्यालयी नियमावली एवं प्रक्रियाओं के क्षेत्रीय भाषाओं में अनुवाद के काम में जुटी हैं। राज्य सरकारों की ओर से आयोजित सेवा प्रशिक्षण के दौरान अधिकारियों एवं कर्मचारियों को राज्य की आधिकारिक भाषा के इस्तेमाल का प्रशिक्षण दिया जाता है। कुछ राज्य प्र ासन में राज्य की आधिकारिक भाषा के इस्तेमाल के लिए अपने अधिकारियों एवं कर्मचारियों को प्रोत्साहन देते हैं। कुछ राज्य सरकारें मैथिली, राजस्थानी, भोजपुरी, ब्रज, पहाड़ी जैसी हिन्दी की बोलियों का संरक्षण करती हैं।

इस प्रकार, भारत में कोई ऐसा राज्य नहीं है, जहां एकमात्र भाषा हो। इसलिए चाहे प्रशासनिक कामकाज की बात हो या शिक्षा के माध्यम की बात, भाषा का चयन हमेशा एक समस्या रही है। राज्य सरकारें विभिन्न क्षेत्रीय एवं स्थानीय भाषाओं को अलग-अलग भूमिकाएँ देकर इस समस्या के समाधान की कोशिश कर रही हैं।

13.4 अनुवाद एवं भारतीय प्रकाशन की भूमिका

हमने भारतीय राष्ट्र की सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं स्वाभाविक विशेषता, भाषाई विविधता, के कारण पेश आनेवाली समस्याओं के बारे में जाना। इसकी वजह से भारत में एक अनुशासन के रूप में अनुवाद के बहुत विकास के बावजूद अधिकतर अनुवाद क्षेत्रीय भाषाओं से अंग्रेजी में और अंग्रेजी से क्षेत्रीय भाषाओं में ही उपलब्ध हैं। हालाँकि क्षेत्रीय भाषाओं के बीच भी अनुवाद हुए हैं, लेकिन उन्हें राष्ट्रीय या अंतरराष्ट्रीय पठनीयता के बजाय स्थानीय पठनीयता ही हासिल हुई है। इस प्रकार, यह भी भारत में भाषाई विविधता के कारण पैदा हुई समस्या है। हालाँकि कोई भी किसी क्षेत्रीय भाषा की पाठ्य सामग्री को अनुवाद के जरिए व्यापक पठनीयता प्रदान करने एवं लोकप्रिय बनाने में भारतीय प्रकाशन घरों की भूमिका से इंकार नहीं कर सकता।

19वीं एवं 20वीं सदी में अनूदित कार्यों, जो मुख्यतः उपनिवेशवादियों द्वारा किए गए प्रयास थे, के प्रकाशन की बहुत कम कोशिशें हुईं। कुछ उपनिवेशवादियों ने प्रिंटिंग प्रेस स्थापित करने का सामूहिक प्रयास किया, जब श्रीरामपुर मि ान प्रेस की स्थापना हुई। हालाँकि शुरुआत में यह प्रेस केवल *बाइबिल* के विभिन्न भाषाओं में अनुवाद के प्रकाशन से संबंधित कार्यों में संलग्न था, लेकिन बाद में इसने महत्वपूर्ण भारतीय भाषाओं में शब्दकोशों एवं धार्मिक तथा साहित्यिक सामग्रियों का प्रकाशन भी शुरू किया। स्वतंत्रता से पहले के भारत में ऐसे अन्य प्रकाशन घर राजपाल एंड सन्स, रेनसान्स पब्लिकेशन, नवजीवन प्रेस इत्यादि हैं, जिनकी महत्वपूर्ण भूमिका रही।

देश की विभिन्न सांस्कृतिक एवं पारंपरिक विरासतों को समझने के लिए लोगों में रुचि विकसित करने के उद्देश्य से देश के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने नौकरशाही के नियंत्रण के बगैर विभिन्न संस्थाओं की स्थापना का निर्णय लिया। इस प्रकार, साहित्य अकादमी (1954) और नेशनल बुक ट्रस्ट (1957) जैसी संस्थाएं स्वायत्त संस्थाओं के रूप में अस्तित्व में आईं, जिन्हें सरकार से अनुदान मिल रहा है।

साहित्य अकादमी की स्थापना देश की क्षेत्रीय भाषाओं में साहित्य के विकास एवं देश की सांस्कृतिक एकजुटता को बढ़ावा देने के उद्देश्य से किया गया था। इस अकादमी का उद्देश्य देश में साहित्यिक गतिविधियों के क्षेत्रा में उच्च मानदंड स्थापित करना है। भारतीय साहित्य की व्यापकता एवं विविधता पर चर्चा तथा सभी आधुनिक भारतीय भाषाओं से साहित्यिक पाठ्यों के प्रकाशन जैसी भारतीय साहित्य से संबंधित विभिन्न गतिविधियों के जरिए यह अकादमी अनूदित एवं मौलिक साहित्य के माध्यम से राष्ट्र निर्माण का उद्देश्य पूरा कर रही है।

भारत में नेशनल बुक ट्रस्ट (एनबीटी) की स्थापना 1957 में हुई थी। इसका उद्देश्य भारत के सभी क्षेत्रों से अच्छे साहित्य का प्रकाशन सभी मान्यता प्राप्त भाषाओं में करना और इन पुस्तकों को कम कीमत पर लोगों को उपलब्ध करवाना है, ताकि भारत में पुस्तक पठनीयता में वृद्धि हो। उनके द्वारा जिस भाषा में अनुवाद किया जाता है, उसमें दो बातों को ध्यान में रखा जाता है, 1. एक भारतीय भाषा से दूसरी भा ा में भारतीय लेखकों के असाधारण कार्यों का अनुवाद और 2. विदेशी भाषा की बेहतरीन पुस्तकों का अनुवाद।

स्वतंत्रता के बाद प्रकाशन घर अधिकतर स्कूलों एवं कॉलेजों के लिए अंग्रेजी पाठ्य सामग्रियों का प्रकाशन करते थे, जिनके उपभोक्ता अधिकतर अकादमिक लोग थे। लेकिन पिछली सदी के 60 के दशक से बदलते परिदृश्य, जब सरकार ने स्कूल की पाठ्य पुस्तकों के राष्ट्रीयकरण का निर्णय लिया, के साथ कई प्रकाशन घरों ने अपना ध्यान व्यापक उपभोक्ता समूहों से व्यक्तिगत खरीदारों और अकादमिक पुस्तकों की बजाय सामान्य रुचि की पुस्तकों के प्रकाशन पर केंद्रित किया।

हालांकि, एशिया पब्लि िंग हाउस, राइटर्स वर्कशॉप, जैको पब्लि िंग हाउस, विकास पब्लिके ंस जैसे कुछ प्रकाशक साठ के दशक में भी भारतीय लेखकों का काम सामने लाने के लिए संघर्षरत थे। सत्तर एवं अस्सी के दशक में कोई सुधार नहीं हुआ, क्योंकि न तो क्षेत्रीय भाषाओं से अंग्रेजी में अनुवाद और न ही पठनीयता में वृद्धि हुई। यह भी एक तथ्य है कि भारत में उन दशकों में कम अंग्रेजी पढ़ने वाले लोगों ने अंग्रेजी में अंग्रेज लेखकों या यूरोपीय लेखकों की पुस्तकें पढ़ने को प्राथमिकता दी।

अंग्रेजी में अनुवाद को नब्बे के दशक में बढ़ावा मिला, जब इसके लिए एक निश्चित योजना बनाई गई और इसका प्रचार-प्रसार किया गया। आर्थिक स्तर पर भी 1991 के सुधारों ने सार्वजनिक क्षेत्र के एक बड़े से हिस्से को उदार बनाया। सुधार के इन एजेंडों को मूर्त रूप देने के क्रम में उदारीकरण का अन्य कारकों के साथ-साथ स्वदेशी सांस्कृतिक उत्पादों से भी सामना हुआ। डेस्क टॉप पब्लिशिंग जैसी उन्नत प्रौद्योगिकी से न केवल प्रकाशन उद्योग में सुधार हुआ, बल्कि इससे पुस्तकों के स्वरूप और उन्हें पाठकों के लिए अधिक आर्क़ाक बनाने में भी मदद मिली। संक्षेप में, भारत में पुस्तकों के लिए वैश्विक बाजार का निर्माण प्रक्रिया में था।

हालाँकि, नब्बे के दशक में और मौजूदा दशक में काल्पनिक कथाओं, गैर-काल्पनिक कथाओं, कविताओं एवं कहानियों के मुख्यधारा के अनुवाद के अतिरिक्त साहित्यिक प्रकाशन के क्षेत्रा में कई प्रयोग हुए, भारतीय भाषाओं में अनुवाद की मुख्य रणनीति वास्तव में राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में भाईचारे की अवधारणा से जुड़ी थी। कथा जैसे प्रकाशन घर ने विविधता में एकता को दर्शाने वाली सामग्रियों को सामने लाया। मौजूदा दशक में कम महत्व के साहित्यों के समावेश ने इस अनुभव को बढ़ाया। हाल के वर्षों में विभाजन, समलैंगिक, दलितों, महिलाओं, धार्मिक अल्पसंख्यकों आदि से संबंधित साहित्यों के प्रकाशन में कई प्रयोग किए गए। एक बार जब इन क्षेत्रों में अनुवाद की संभावनाओं पर गौर किया गया तो भारत में कई प्रकाशन घरों का विकास हुआ। इनमें सबसे प्रमुख गैर-लाभकारी प्रकाशन घर कथा है, जिसकी स्थापना 1988 में की गई थी। इसने कई प्रमुख भारतीय भाषाओं में अनूदित काल्पनिक कथाओं एवं लघु कथाओं का संग्रह पेश किया। इसने कथाविलासम नामक एक परियोजना शुरू की, जिसका उद्देश्य अनुवाद के सिद्धांतों एवं व्यवहार की संस्थापना करना था। इसने भारत में अनुवाद से संबंधित गतिविधियों के लिए कई कार्य ाालाओं, सेमिनार का आयोजन किया और अवार्ड भी शुरू किए। इसने देशभर में अनुवाद से संबंधित प्रतियोगिताओं का भी आयोजन किया।

स्त्री (1990 में स्थापित) और काली फॉर वीमेन (1984 में स्थापित) जैसे प्रकाशन घरों ने काल्पनिक कथाओं, गैर-काल्पनिक कथाओं, आत्मकथाओं आदि की श्रेणी में महिलाओं से संबंधित मुद्दों के अनुवाद को प्राथमिकता दी। साम्य के नाम से जाने जाने वाले स्त्री ने अपने प्रकाशन के जरिए जाति, छुआछूत आदि जैसे मुद्दों को अंग्रेजी अनुवाद के जरिए उठाया। जुबान अल्पसंख्यक समूहों से संबंधित सामग्रियों के अनुवाद और कम ख्याति प्राप्त लेखकों के अच्छे साहित्यिक कार्यों को सामने लाने के लिए समर्पित है। नवायना पब्लि ंग हाउस (2003 में स्थापित) गैर-काल्पनिक लेखनों पर ध्यान केंद्रित करता है, जो आवश्यक नहीं कि मुख्यधारा में आती हो।

13.5 भारतीय अनुवाद एवं अंतरराष्ट्रीय प्रकाशन

भारतीय अर्थव्यवस्था वै वक बाजार के लिए 1991 के आर्थिक सुधारों के बाद खोली गई। कई विदेशी, बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने भारतीय बाजार में रुचि दिखाना शुरू किया। विदेशी प्रका ाकों ने भारत में अंग्रेजी जानने वाले और पढ़ने वालों पर ध्यान केंद्रित किया। हालाँकि कुछ विदेशी प्रका ाक भारत में स्वतंत्रता से पहले से हैं। 1880 में स्थापित ओरिएंट लांगमैन लिमिटेड भारत में सबसे पुराना ब्रिटिश प्रकाशन घर है। भारत में मैकमिलन की स्थापना 1902 में मैकमिलन ऑफ ब्रिटेन का प्रतिनिधित्व करने के लिए किया गया था।

मैकमिलन, ओरिएंट लांगमैन एवं ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस का ध्यान शुरू में भारत में अंग्रेजी पाठ्य पुस्तकों पर केंद्रित था। भारत में अंग्रेजी प्रकाशन के क्षेत्रा में शैक्षणिक प्रकाशन अब भी एक बड़ा क्षेत्रा है। भारत में ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी ऑफ प्रेस, मैकमिलन, टाटा मैक्ग्रा हिल, ओरिएंट लांगमैन, प्रेंटिस हॉल, रूपा-हार्पर कोलिन्स, सेज आदि कुछ बड़े शैक्षणिक प्रकाशक हैं। उनके अन्य प्रकाशनों में भारतीय लेखकों द्वारा अंग्रेजी में लिखी गई काल्पनिक एवं गैर-काल्पनिक सामग्रियाँ शामिल हैं। भारतीय लेखकों के अंग्रेजी लेखन एवं अंग्रेजी में अनुवाद को सामने लाने की कोशिशें सबसे पहले संगम बुक्स (ओरिएंट लांगमैन की शाखा), ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, अर्नोल्ड हीनमैन एंड बेल बुक्स ने की। हालाँकि, अंग्रेजी में लिखने वाले भारतीय लेखकों की पाठ्य सामग्रियों की तुलना में अनूदित सामग्रियों के पाठकों की संख्या कम थी। हालाँकि वाणिज्यिक दृष्टि से अनुवाद का प्रकाशन व्यावहारिक विकल्प नहीं था, फिर भी तमिल, कन्नड़, मराठी, बांग्ला एवं हिन्दी जैसी भाषाओं से खूब अनुवाद हुए। ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस ने प्रख्यात भारतीय नाटककारों द्वारा लिखित भारतीय नाटकों के कई अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित किए, जिससे 'राष्ट्रीय नाट्यशाला' का मार्ग प्रशस्त हुआ। कुछ प्रकाशन घरों ने अनुवाद की अपनी पुरानी शृंखला

के साथ-साथ अनुवाद में नए शीर्षकों का भी प्रकाशन किया।

कुछ लोकप्रिय प्रकाशन घरों ने अनुवाद से संबंधित कई मि ान को शुरू किया। ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस ने अनुवाद में आधुनिक काल्पनिक कथाओं की शृंखला शुरू की। मैकमिलन ने अंग्रेजी अनुवाद कार्यक्रम में अपने आधुनिक उपन्यासों के हिस्से के रूप में 80 काल्पनिक कथाओं का प्रकाशन किया। ओरिएंट लांगमैन ने सत्तर के दशक में संगम बुक्स के नाम से सामग्रियाँ प्रकाशित की, जो फिलहाल दिशा के नाम से जानी जाती है। दि ाा ने अंग्रेजी में भारतीय लेखन के साथ-साथ अनुवाद पर भी ध्यान केंद्रित किया। पेंगुइन इंडिया हर साल अनुवाद में 15 शीर्षकों का प्रकाशन करती है, जबकि रूपा-हार्पर कोलिन्स सालाना पांच अनूदित शीर्षकों का प्रकाशन करता है। सीगुल बुक्स ने अंग्रेजी अनुवाद में नाटकों के कई प्रकाशन किए हैं। पिकाडोर इंडिया ने भी भारतीय अनुवाद में रुचि दिखाई है।

हाल के दिनों में विदेशी प्रकाशकों ने भारतीय भाषाओं से अनूदित सामग्रियों की गुणवत्ता, संख्या, पठनीयता को देखते हुए प्रकाशन में रुचि दिखाई है, जिसके कारण भारत में अनुवाद प्रकाशन का बाजार तेजी से फल-फूल रहा है। जैसे-जैसे अनुवाद का बाजार बढ़ रहा है, अनुवाद में अच्छे कार्यों की माँग भी बढ़ रही है। एक कौ ाल एवं कॅरियर के रूप में अनुवाद को खूब बढ़ावा मिल रहा है। प्रकाशन घरों द्वारा अनुवादकों को मान्यता प्रदान करने का नतीजा प्रकाशन उद्योग की ओर से कॉपीराइट नीतियों एवं संशोधित भुगतान योजना को अपनाए जाने के रूप में सामने आया है। इसके अतिरिक्त, अनुवादकों को तकरीबन सभी प्रकाशकों द्वारा अपने परिचय का स्थान मुहैया कराया जाता है।

13.6 सारांश

पूर्व की इकाइयों में आपने पढ़ा कि किस प्रकार उत्तर-उपनिवेशवाद ने डायस्पोरा लिटरेचर एवं सबअल्टर्न स्टडीज जैसे अनुशासनों को बढ़ावा दिया। इस ईकाई का उद्देश्य आपको यह बताना था कि भारतीय भाषाई राज्यों के गठन में क्या हुआ और भाषाई संदर्भ में राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में भारतीय भाषाओं का विकास किस प्रकार हुआ। इस प्रकार, यह इकाई अनुवाद की राजनीति के बारे में बताती है। भारत में अनुवाद को समझने के क्रम में हमने ऐसे वक्त में भारत में हुए भाषा आंदोलन एवं प्रदर्शनों के बारे में जाना, जब यह एक राष्ट्र के रूप में उभरने की कोशिश कर रहा था। हमने स्वतंत्रता के बाद के भाषा आंदोलनों की विस्तृत चर्चा किए बगैर उनके बारे में जाना। इसके बाद हमने भाषा नीतियों एवं अनुवाद को बढ़ावा देने में राज्यों की भूमिका के बारे में जाना। अगली दो उप-इकाइयाँ भारत में अनुवाद कार्यों को बढ़ावा देने में भारतीय तथा अंतरराष्ट्रीय प्रकाशन घरों की भूमिका से संबंधित हैं। जब आप इस ब्लॉक में अगली इकाई का अध्ययन करेंगे तो इस इकाई की प्रासंगिता को समझ पाएंगे।

13.7 अभ्यास के लिए प्रश्न

13.8 शब्दावली

13.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- Kothari, Rita. 2003. *Translating India.* Foundation Books: Delhi.
- Srivastava, G. N. 1970. *The Language Controversy and the Minorities.* Atmaram & Sons, Delhi.
- *Websites:*

www.jstor.org

www.scribd.com

- कथा, साहित्य अकादमी, ने ानल बुक ट्रस्ट, मैकमिलन, ओयूपी, ओरिएंट लांगमैन तथा रूपा-हार्पर कोलिन्स की वेबसाइटें।

इकाई 14 अंग्रेजी भाषा और अनुवाद

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य

14.1 प्रस्तावना

14.2 भारत में उपनिवे ावाद और अंग्रेजी भाषा नीति

14.3 अंग्रेजी और भारतीय साहित्य

14.4 अंग्रेजी में भारती लेखन/रचनाएँ

14.5 अंग्रेजी अनुवाद में भारतीय साहित्य

14.6 'भारतीय अंग्रेजी' और भारत में अंग्रेजो का वैविध्य/की विविधता

14.7 सारांश

14.8 अभ्यास के लिए प्रश्न

14.9 शब्दावली

14.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

14.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद, आप :

- भारत में अंग्रेजी भाषा के बदलते प्रतिमानों का वर्णन कर सकेंगे;
- भारत में अंग्रेजी में लिखित साहित्य की विशाल मात्र को पहचान सकेंगे;
- अंग्रेजी में अनूदित भारतीय साहित्यों में अंग्रेजी की भूमिका की व्याख्या कर सकेंगे;
- अनुवादों में प्रयुक्त/व्यावद्धत रूप में 'भारतीय अंग्रेजी' के विशेष वर्ग को निर्धारित कर सकेंगे;
- और कैसे आधुनिक विश्व में अंग्रेजी ' ाक्ति' की भाषा बन गई, यह निर्धारित कर सकेंगे।

14.1 प्रस्तावना

हम देखते हैं कि आज कल बड़ी संख्या में पुस्तकों, खासतौर पर कथा-साहित्य का अंग्रेजी में बड़ी तेजी से अनुवाद हो रहा है। इस इकाई का उद्देश्य इस प्रश्न को संबोधित करता है। इस इकाई में केवल इस पर चर्चा नहीं की जाएगी कि ये अनुवाद क्या है, अपितु अधिक महत्वपूर्ण यह है कि ये अनुवाद क्यों हो रहे हैं? यह हमें भाषा और शक्ति के प्रश्न की ओर ले जाएगा।

इसकी शुरुआत हम भाषा की भूमिका पर कुछ प्रारम्भिक अवलोकनों से करते हैं। भाषा एक समुदाय संस्कृति या जाति के जीवन में शायद सबसे महत्वपूर्ण लक्षण होती है। भाषा न केवल अभिव्यक्ति और संप्रेषण का सबसे महत्वपूर्ण माध्यम है अपितु सामाजिक और सांस्कृतिक आदान-प्रदान का एक निर्णायक साधन भी है। भाषा के माध्यम से ही हम नए लोगों, नए रिवाजों और संस्कृतियों को जान पाते हैं और ऐसे समाज के साथ जिसके भाषिक नियम। मान्यताएँ संभवतः भिन्न हो, संप्रेषण के विस्तृत संजाल स्थापित कर सकते हैं। भाषा हमेशा से ही पहचान एवं प्रतिनिधित्व का साधन रही है और इसी कारण इसमें सत्ता की राजनीति का शामिल होना स्वाभाविक है। उपनिवेशिवाद के संदर्भ में भी भाषा शासक और शासित दोनों के लिए ही महत्वपूर्ण है। दूसरे शब्दों में कहे तो उपनिवेशी और उपनिवेशित दोनों के लिए।

हम अपनी पिछली इकाइयों में ही भाषा परिवारों पर चर्चा कर चुके हैं। एक भाषा के रूप में अंग्रेजी भारोपीर भाषा परिवार से उत्पन्न हुई है। पहले इसे भारत-जर्मनिक कहा जाता था। अभी भी पहले इसे इंडो आर्थन के नाम से जाना जाता है। 'भारोपीय' नाम भाषिक प्रकारों/रूपों के उस विशेष/विशिष्ट समूह को दिया गया है जिससे लगभग सभी यूरोपीय भाषाएं साथ ही साथ फारस की तथा भारत के एक बड़े भाग की भाषाएं (संभवतः) निकली है। हम 'भारोपीय' शब्द का प्रयोग केवल इस कारण से करते हैं क्योंकि जिन भाषाओं से यह परिवार बना है वे अधिकां ा यूरोप व भारत में फली हुई है। भाषा के रूप में अंग्रेजी के विकास क्रम को प्रभावित करने वाले अन्य अनेक कारणों के साथ पांचवी और छठी शताब्दियों में नए द्वीप (आज के इंग्लैंड) पर जूट्स, सॅक्सन और एंगल्स जनजातियों का प्रारंभिक प्रवास/आवास और प्राचीन मध्य व आधुनिक जैसे विभिन्न चरणों से स्वयं भाषा का निरन्तर विकास भी शामिल है।

अंग्रेजी ब्रिटिश साम्राज्य के औपनिवेशिक उद्यमों के लिए एक महत्वपूर्ण साधन रही है। अंग्रेजी ने औपनिवेशिक काल और स्वतंत्रता पश्चात् दोनों युगों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इसे 'उत्तर-औपनिवेशिक' काल की संज्ञा भी दी जाती है। ब्रिटिशर्स ने नियमों को लागू करने के साधन से, सभी प्र ाासनिक मामलों में अंग्रेजी के मन-माने प्रयोग और अपने पूरे शासनकाल के दौरान किए गए अनुवादों और व्याख्याओं की गतिविधियों के माध्यम से भारत की भाषाओं पर पूर्ण रूप से नियन्त्रण किया। अपनी प्रारंभिक पुस्तक 'द एम्पायर' राइट्स बैक; थ्योरी एण्ड प्रैक्टिस इन पोस्ट कोलोनियल लिटरेचर, की प्रस्तावना में बिल ऐस्क्रॉफ्ट, गेरिथ ग्रिफिथ और हॅलॅन टिफिन, यह तर्क देते हैं कि '' ाही शिक्षा प्रणाली'' ने महानगरीय भाषा के 'मानक' स्वरूप को आद र्ा माना और सभी रूपातन्तरणों को अ ाुद्ध के रूप में हाशिए पर डाल दिया। ''हम भाषा एक ऐसा माध्यम बन गई जिसके द्वारा शक्ति का पदानुक्रम स्थाई बनाया गया और यह एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा 'सत्य', 'अनुक्रम' और 'वास्तविकता' की संकल्पनाएँ हुई। (एस्क्रॉफ्ट एट एल : 1989)

पश्चिमी उपनिवे ावादी जहाँ भी एग वहां वे अपने साथ एक भाषा भी ले गए; भारत के मामले में अंग्रेजी का आगमन हुआ (अफ्रीकी महाद्वीप के देशों में भी)। अंग्रेजी एक ऐसा माध्यम बन गई जिसके द्वारा आनुक्रमिक शक्ति तंत्र (ब्रिटिश) प्रशासनिक, शैक्षिक और सांस्कृतिक मंचों द्वारा अधीनो पर स्थाई बनाया गया।

14.2 उपनिवे ावाद और भारत में अंग्रेजी भाषा की नीति

भारत में अंग्रेजी एक महत्वपूर्ण भाषा के रूप में क्यों उभरी है इस पर विचार करने के लिए हमें औपनिवेशिक काल से प्रारंभ करना होगा, जब ब्रिटिश भारत में अंग्रेजी भाषा को एक बहुत बड़े पैमाने पर देश किया गया। उपरोक्त उल्लिखित अंग्रेजी का प्रचालन और 'स्थापना' एक सोची समझी नीति के द्वारा किया गया ताकि भारतियों में 'लोगों का एक वर्ग' निर्मित थे जो कि बाद में साम्राज्य के औपनिवेशिक कार्यो के लिए उपयुक्त हो सके। भारत के औपनिवेशिक इतिहास में एक अग्रणी हस्ती रहे थॉमस मैकाले अपने 'मिनट्स ऑन इंडियन एजुकेशन' में यह दृष्टि सुस्पष्ट की है।

''यह हमारे लिए असंभव है कि हम अपने सीमित संसाधनों के साथ लोगों के समूह को शिक्षित करने का प्रयास करें। वर्तमान में हमें अपना सर्वोत्तम प्रयास करना चाहिए, एक ऐसे वर्ग के निर्माण के लिए जो हमारे और उन लाखों लोगों के बीच दुभाशिये का काम कर सके जिन पर हम शासन कर रहे हैं। लोगों का एक ऐसा वर्ग जो नस्ल और रंग में भारतीय हो परन्तु रुचि, मत नैतिकताओं और बुद्धि से अंग्रेज (हमारे जैसा) हो। हम यह उस वर्ग पर छोड़ सकते हैं कि देश की स्थानीय बोलियों का परिकार करें, उन बोलियों को पश्चिमी नामावली से ली गई वैज्ञानिक शब्दावली के द्वारा संपन्न बनाए और लोगों के विशाल समूह तक ज्ञान को पहुंचाने के लिए'' (एस्क्राफ्ट एट एल : 1995, 430)

इसके कुछ दशक पहले, ग्रेट ब्रिटेन के एशियाई विषयों में समाज की स्थिति पर 1792 में चार्ल्स ग्रांट के अवलोकन में उत्तेजक स्वर में नए उपनिवे ा के स्वरूप और दृष्टिकोण को बदलने के महत्व पर विशेष महत्व दिया और यह प्रस्तावित किया गया था कि यह अंग्रेजी भाषा के द्वारा संभव हो सकता है। ऐसा माना गया कि यह उपनिवेशिक उद्यम के लिए एक महत्वपूर्ण उपकरण हो सकता है :

अंधेरे का सही उपचार प्रका ा से परिचय है। हिन्दु गलती करते हैं, क्योंकि वे अज्ञानी है; और उनकी त्रुटियाँ कभी भी उनके समक्ष उचित रूप में नहीं रखी गई। उन तक हमारे ज्ञान और प्रका ा का संप्रेषण उनके विकारों के लिए सबसे अच्छा उपाय साबित होगा। तब हम यह देखने के लिए आगे बढ़ेंगे कि यह पूर्ण रूप से इस देश की शक्ति में है, हमारी भाषा हिन्दुओं को प्रदान करने के लिए अंशों द्वारा इसके बाद इस माध्यम द्वारा उन्हें विविध विषयों पर अपनी सरल साहित्यिक रचनाओं से अवगत और विचार के उपहास को आकर्षित न करने दे अपितु कलाओं, हमारे दर्शन और धर्म के साथ उत्तरोत्तर अंग्रेजी भाषा ही प्रथम संप्रेषण और अन्य से परिचित होने का साधन होना चाहिए; यह एक कुंजी है जो उनके लिए नए विचारों की एक दुनिया के द्वार खोलेगी, और हो सकता है कि अकेले यह नीति, एक लम्बे समय के बाद इसे उनके हाथों में सौपने के लिए हमें प्रेरित करें। (घोष : 1926, 29)

ब्रिटिश शिक्षकों ने समाज में लम्बे समय से व्याप्त बुराइयों और अंधविश्वासों का उन्मूलन अति आवश्यक समझा। समाज को देर किया बिना 'अज्ञानता' से जल्द ही मुक्त कराना था। और जैसा कि ग्रांट के कथनों में व्यक्त किया गया, अंग्रेजी इस बड़े प्रयास के लिए एक महत्वपूर्ण हथियार बन सकती थी। यद्यपि रोचक बात यह है कि शिक्षा का केवल ब्रिटिश ढाँचा ही 'सत्य और उदारता का नया स्रोत उपलब्ध करा सकता था।' (वही पृ. 28)

अंग्रेजी ने इस प्रकार की महत्वकांक्षी शैक्षिक नीतियाँ अपने औपनिवेशिक शासन काल के आरम्भिक चरणों में अपनाई जिसके व्यवहारिक परिपालन में कुछ खास सफलता नहीं दिखी। संभवतः ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि उन्होंने अपनी प्रतिज्ञप्ति में अंग्रेजी पर ही अत्यधिक ध्यान दिया और भारत के समृद्ध सांस्कृतिक और भाषिक के विषय में विचार करना पूरी तरह से नजर अंदाज कर दिया या लगभग भूल ही गए थे। प्रशासको और अधिकारियों ने इन उच्चाभिलाषी प्रतिज्ञप्तियों को अवांछनीय और अव्यवहारिक पाया। ऐसा केवल 16वीं शताब्दी के अन्तिम दशकों में हुआ कि प्राच्य भाषाओं और संस्कृति में शिक्षित करने वाले औरा प्राच्यवेता कहे जाने वाले ब्रिटिश शिक्षक उपनिवे ित सभ्यता के अतीत के पुनरावलोकन के प्रयास किए, जिसे उन्होंने अपना गौरव खो चुकी हुई पाया। हमने अपनी पिछली इकाइयों में अनुवाद के संदर्भ से उपनिवे ित भारत के निर्माण में प्राच्यवेताओं की भूमिका पर चर्चा की थी। हमने इस पर विस्तारपूर्वक चर्चा की थी के कैसे मूलनिवासियों के सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों, मान्यताओं और रिवाजों को पुनर्जीवित करने में प्राच्यवेताओं ने प्रयास करने आरम्भ किए। एक ऐसी क्रिया जो बाद में उपनिवे ावाद की प्रक्रिया की सफलता के लिए काम कर सके। शिक्षा के माध्यम से सुधार के उद्देश्य को स्थानांतरित कर दिया और इस चरण में, यह देश के मौजूदा भाषाई और साहित्यिक अतीत पर पुनर्निर्माण के माध्यम से किया जाना था। अनिवे ित राष्ट्र की शास्त्रीय और स्थानीय भाषाओं के शिक्षण और अध्ययन की प्रक्रिया औपनिवेशकों और उनके अधीन दोनों के लिए ही भारत के औपनिवेशिक प्र ाासन के लिए लगभग केंद्रीय आकर्षण का कारण बन गई है। इस महत्व ने उपनिवेशितों के समक्ष औपनिवेशिकों की स्थिति को पुनः परिभाषित किया और शक्ति के संतुलन के नए समीकरण स्थापित किए।

अंग्रेजों द्वारा भारत में स्थापित शैक्षिक संस्थानों ने शास्त्रीय देशीय बोलियों और देश के इतिहासों में शिक्षा प्रदान करना आरंभ कर दिया। शिक्षा का माध्यम पूर्णतः अंग्रेजी रहा। शैक्षिक संस्थानों में शिक्षा के माध्यम के रूप में अंग्रेजी भाषा के सुव्यवस्थित कार्यान्वयन को सरकार की बहुत सी नीतियों ने स्वरूप प्रदान किया और साहित्य से संबंधित विचारधाराओं के लिए कार्य करने के लिए एक औजार के रूप में नियोजित किया गया। जहाँ तक पाठ्यक्रम सामग्री का संबंध था, तो पाठ्यक्रम में समय-समय पर परिवर्तन किए गए थे। इसका मुख्य कारण स्वयं शिक्षकों के बीच विरोधभास था जो विभिन्न पक्षों जैसे सांस्कृतिक, भाषाई और कुछ हद तक वित्तीय में उपस्थित हुआ।

शिक्षा पर ब्रिटिश नीतियां विभिन्न वर्गों के गठन द्वारा सूत्रबद्ध की गई थी जो साहित्य उत्पादन में लगे हों। इन वर्गों में प्राच्यवाद, स्थानीय साहित्यकार, मुंशीय और मध्य वर्गीय बुद्धिजीवी शामिल थे। ये वर्ग शैक्षिक संस्थानों में व्यवसायिक पदों और मिशनरियों से संबद्ध थे, जो विभिन्न भाषाओं के शिक्षण, स्थानीय भाषाओं से शास्त्रीय पाठों के अंग्रेजी में अनुवादों और उनकी भाष्य टीकाओं जैसे विभिन्न उद्देश्यों को पूरा करते थे।

यद्यपि भारतीय भाषिक और साहित्यिक परंपराओं के पुनर्जागरण में 'अंग्रेजी' प्राच्यविदों के योगदान पर पिछली

इकाइयों में चर्चा की गई है किंतु ये फिर से अति संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत किए गए हैं। जिससे की आपको इकाई समझने में आसानी हो। वॉश्न हेस्टिंग ने 1770 में नॅथानियल हॉलहेड की 'ए कोड ऑफ गेनटो लॉज' (1776) और उनकी अपनी 'ग्रामर ऑफ दा बंगाली लेंग्वेज' (1778) को प्रोत्साहित एवं संरक्षित किया। फारसी और हिन्दुस्तानी में निपुण हेस्टिंग ने नियम। कानूनों के अनुवाद को प्रात्साहित किया था ही परामर्श दिया कि भारतीयों को स्वयं उनके कानूनों द्वारा शासित होना चाहिए। हालांकि बाद में उन्होंने महसूस किया कि कानून के बारे में अंग्रेजों के अज्ञान का पंडित और मौलवीय लाभ उठा रहे हैं। हेस्टिंग ने सबसे पहली संस्था 1780 में कलकत्ता मदरसा के नाम से स्थापित की। हॉलडेड ने बहुत सी संस्कृत तियों का अंग्रेजी में अनुवाद किया जैसे भागवत पुराण, ि ाव पुराण, ब्रह्मवैर्वत्र पुराण और महाभारत ओर इनमें से ज्यादातर बिना किसी संरक्षण के किए गए थे।

संभवतः सबसे प्रमुख शख्सियत सर विलियम जोंस ने 1784 में दिए शियाटिक सोसाइटी की स्थापना की जो अन्य कार्यों की अपेक्षा संस्कृत ग्रंथों के प्रका ान में अधिक संलग्न थी। जोनाथन डंकन ने 1792 में संस्कृत कॉलेज की स्थापना की जो संस्कृत शिक्षा में सुधार और हिन्दु संस्कृति पर ध्यान केंद्रित था। वेलजली ने 1800 में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना की जिसे उपनिवेशकों और उपनिवेशितों के बीच भाषा और संस्कृति की बाधाओं को पार कर ब्रिटिश साम्राज्य को स ाक्त बनाने के दृटिकोण के साथ खोला गया थां सन् 1857 में कलकत्ता, बॉम्बे और मद्रास में तीन विश्व विद्यालयों की स्थापना संभवतः विद्रोह की सबसे उत्तम संभव पराकाठा थी। ऐसे विश्वविद्यालय जो कि अंग्रेजी के प्रचार-प्रसार के लिए सहायक के रूप में कार्य कर सकते थे। हालांकि उन्होंने नए साहित्य के विकास के लिए सीधे तौर पर कुछ अधिक योगदान नहीं दिया। किंतु उन्होंने ऐसी संभावनाओं के लिए मार्ग बनाए।

संस्कृत, फारसी, हिंदुस्तानी और अंग्रेजी ये चार भाषाएं है जिन्होंने पूर्व औपनिवेशिक काल से स्वतंत्रता तक इस पूरे इतिहास को देखा। जहाँ हिंदुस्तानी अधिकतर स्थानीय निवासियों और उन प्राच्यविदों के बोलचाल का माध्यम थी जिन्होंने इसे सीखा और जिनमें से बहुतों ने अरबी और फारसी भी सीखी, वहीं संस्कृत शास्त्रीय पांडुलिपियों की भाषा थी और इसे केवल अनुवादों और व्याख्याओं संबंधित जरूरतों के लिए सीखा जाता था। जहाँ संस्कृत अपनी प्रधानता खोती जा रही थी, वहीं धीरे-धीरे फारसी न्यायालय और प्र ाासन की भाषा बन गई। वास्तव में, 1799 में पब्लिक ऑफिस द्वारा एक अधिसूचना पारित की गई जिसने कम्पनी के अधिकारियों के लिए उच्च कार्यालयों के नियंत्रण के लिए फारसी के साथ-साथ हिन्दुस्तानी और बंगाली सीखना अनिवार्य कर दिया। 1838 में अंग्रेजी ने फारसी का स्थान ले लिया।

अंग्रेजी भाषा का शिक्षण और अभिग्रहण ब्रिटिश भारत में भाषा और साहित्य दोनों में ही रहा था। ब्रिटिश भारत में अंग्रेजी के प्रारंभिक पाठ्यक्रम मुख्य रूप से भाषिक अध्ययनों पर केन्द्रित था, हालांकि पाठ्यक्रम की सामग्री साहित्यिक स्रोतों से प्राप्त की जाती थी। पाठ्यक्रम में साहित्यिक अध्ययन दो श्रेणियों में था। एक, शास्त्रीय अध्ययन जो 'उच्च' वर्गों को प्रदान किया जाता था और दूसरा धार्मिक अध्ययन जो 'निम्न' वर्गों को सिखाया जाता था (विश्वनाथनः 1987)। पाठ्यक्रम की सामाग्री के बारे में खासतौर पर इसमें मौजूद साहित्य के अंश के इर्द-गिर्द घूमते इस प्रकार के मुद्दे उन्नीसवी सदी के पूरे पूर्वार्ध में प्रचलित हुए।

14.3 अंग्रेजी और भारतीय साहित्य

अपने पूर्व पाठ्यक्रमों में हमने देखा कि सामाजिक सांस्कृतिक, शैक्षिक/सांस्थानिक, नृविज्ञानी राजनीतिक इत्यादि सभी क्षेत्रों में चीजों को कार्य रूप देने में भारत की बहुभाषिक पहचान हमेशा निर्णायक कारक रही है। द्विभाषिकता या बहुभाषिकता को हमेशा ही यथार्थ के रूप में स्वीकार किया जाता रहा है। जिसे 'भारतीय' कहा जा सके (दूसरों शब्दों में 'भारतीय साहित्य') ऐसे साहित्य का विचार ही अपने आप में अत्यधिक विविधता रखता है। जिसके कारण भारतीय साहित्य के क्षेत्र को निर्धारित करना हमेशा मुश्किल रहा है।

भारत में विद्यमान प्रारंभिक साहित्य संभवतः संस्कृत, पालि और तमिल में लिखित थे। इसके बाद हिन्दी और उर्दू, बांग्ला और मराठी, असमिया और गुजराती इत्यादि में अन्य साहित्य उभरे थे। आज आधुनिक भारतीय साहित्य के तौर पर जाने जाते हैं। भारत में अंग्रेजी के आगमन के साथ भाषाओं और उनके साहित्य के अनुक्रम में

असाधारण रूप से बदलाव आया था। अंग्रेजी भाषा के साथ कई बाद आरोपण के रूप में पश्चिम के साहित्य को पढ़ने की माँग/शर्त आई/भारत में अंग्रेजी को दो तरीकों से काम में लाया गया : पहला, इसे एक सीखने पढ़ने की भाषा बनाते हुए जिससे कि भारतीय पश्चिम के साहित्य को जान सकें एवं (अनुवाद जैसे) अनेक अनुवर्ती उद्देश्य पूरा कर सकने के लिए बिलकुल भाषिक रूप में; दूसरा एक अनुशासन के रूप में जिसके अंतर्गत अंग्रेजी की संस्थाएं स्थापित की गई। इनमें अंग्रेजी या एंग्लो - अमेरिकन साहित्य अध्ययन के मुख्य क्षेत्र के तौर पर पढ़ाया जाए। इस प्रकार अंग्रेजी मध्यस्थता की, दरार पाटने की, संस्कृतियों को जोड़ने की एक-दूसरे को जानने की भाषा बनी। भारतीय साहित्य के जाने-माने इतिहासकार शिशिर कुमार दास अपनी पुस्तक 'ए हिस्ट्री ऑफ इंडियन लिटरेचर' में उल्लेख करते हैं कि 'अन्य भारतीय साहित्यों के साथ अंग्रेजी साहित्य का यह सह-अस्तित्व' 'भारतीय साहित्यिक-भाषिक स्थिति का एक विशिष्ट लक्षण है' (दास : 1995, 54)।

इस प्रकार अंग्रेजी रचनात्मक लेखनों के लिए माध्यम के तौर पर अनेक भारतीय की सहानुभूति मूलक पसंद के रूप में प्रयोग होती रही। इसके बारे में हम अगली उपइकाई अंग्रेजी में भारतीय लेखने में चर्चा करेंगे। मूलतः अंग्रेजी में लिखने वाले भारतियों के साथ-साथ भाषा साहित्य अपनी पहले की परंपरा को जारी रखते हुए उन्नत हुए। अब ये दोनों ही अंग्रेजी में भारतीय साहित्य और भारतीय (भाषा) साहित्य भारतीय विश्वविद्यालयों के साहित्य संकायों में विशिष्ट तौर पर गठित धाराएं हैं।

14.4 अंग्रेजी में भारतीय लेखन

पूर्ववर्ती खण्डों में हमने भारत में अंग्रेजी भाषा के स्थापित होने और व्यवहार में आने की प्रक्रिया को समझने का प्रयत्न किया। अब हम अंग्रेजी भाषा में भारतीय साहित्य पर चर्चा करते हैं। अंग्रेजी में भारतीय साहित्य ब्रिटेने और भारत के मध्य लम्बे औपनिवेशिक मुठभेड़ से निकला। सोलहवीं शताब्दी में सैमुअल डैनियल ने अंग्रेजी भाषा के भविष्यनुरूप गौरव की भविष्यवाणी करते हुए कहा था :

Who knows whether we may vent
The treasures of our tongue? To what strange shores.
This goin of our best glory shall be sent
T' enriche unknowing nations with our stores.
What worlds in the' yet unformed oriend
May come refined with th' accents that are ours.
(Sainvel Daniel in 'my sophilus')

अंग्रेजी में भारतीय लेखन साहित्य का एक समूह है, जो विविध रूप से 'इंडो-अंग्लियन साहित्य', 'भारतीय-अंग्रेजी साहित्य' और 'इंडो-इंग्लिश साहित्य' कहा जाता है। यह भारतीय लेखकों द्वारा मूलतः अंग्रेजी में लिखा गया साहित्य है। अपने प्रारंभिक समय से ही 'इंडो-अंग्लियन' और 'इंडो-इंग्लिश' जैसे प्रयोगों की संदेहात्मक आलोचना हुई। एक यथ्रेट सीमा तक यह अंग्रेजी में भारतीय लेखन एवं भारतीय अंग्रेजी साहित्य ही थे जिन्हें भारतियों द्वारा अंग्रेजी में लिखित साहित्य के समूह को संबोधित करने के लिए व्यापक रूप से प्रयोग किया गया। जैसा कि हमने पहले उल्लेख किया था कि जब ब्रिटिश भारतीय अतीत के पुर्नसजर्ण में लगे हुए थे (इस प्रक्रिया में प्राचीन ग्रंथों का अंग्रेजी में अनुवाद किया जाना मुख्य कार्य रहा) उसी समय अंग्रेजी शिक्षा और पश्चिमी विचारों का क्रमिक विस्तार उत्साही भारतियों के एक समूह को सामने लाया जो पश्चिमी विद्या से बहुत ही प्रभावित थे। तथापि अंग्रेजी भाषा प्रचार के समर्थकों के अलावा रूढ़िवादी भी थे। एक तरफ अंग्रेजी शिक्षा का समर्थन करने वालों में व द्धि होती रही, तो उसी समय दूसरी तरफ लगभग सभी जगहों पर 'विदेशी' शिक्षा प्रणाली से बड़े पैमाने पर नराजगी भी देखी गई। नायक अपने विवरण में कहते हैं कि फिर भी, भारतियों में से अधिक भविष्योंन्मुखी मानते थे कि अंग्रेजी शिक्षा राक्षसी आसव नहीं ईश्वरी वरदान है। (वहीं, 11)

राजा राममोहन राय भारत में अंग्रेजी शिक्षा के सबसे बड़े समर्थकों में से एक थें बहुत से इतिहासकारों ने यह

माना है कि मैकाले के 1835 के प्रसिद्ध मिनट से लगभग दो दशक पहले से ही भारतियों ने अंग्रेजी में लिखना शुरू कर दिया था। कैवल्य वेंकट बोरियाह (1770-1803), राजा राममोहन राय (1772-1833) हैनरी एल.वी. डेरोजियों (1809-31) व उनके दो छात्र के.एम. बनर्जी (1831-85) और रामगोपाल घोष (1815-68) एवं काशीप्रसाद घोष (1809-73) ये अंग्रेजी में लिखने वाले शुरूआती भारतियों में से हैं। हम इन्हें भारतीय लेखकों के उस प्रथम पीढ़ी के रूप में मान सकते हैं, जिनका अधिकांश अंग्रेजी लेखन 1857 संग्राम के पूर्व ही काव्य एवं निबंधों से लेकर साहित्यिक और दा ार्शनिक गद्यों में प्रतिध्वनित होता है। इनमें कई दूसरी भारतीय भाषाओं में भी उतने ही निपुण थे और उनमें लिखते थे तथा इनका रचनात्मक लेखन में अंग्रेजी का चुनाव अंग्रेजी भाषा की बढ़ती ग्रहणशीलता एवं अकादमिक व सामाजिक-राजनीतिक स्तरों जैसे बहुत से क्षेत्रों में इसका वृहद पैमाने पर प्रयोग के साथ घटित हुआ।

1857 के विद्रोह की समाप्ति और उसके परिणास्वरूप ईस्ट इंडिया कम्पनी शासन की समाप्ति तथा 1858 में शांति की उद्घोाणा से अंग्रेजी में भारतीय लेखन के एक नए युग का प्रारंभ हुआ। रमेशचंद्र दत्त (1848-1909), मनमोहन घोष (1869-1924), आनंद केंटिश कुमारस्वामी (1877-1947), वंकिश्मचंद्र चटर्जी (1838-94), श्री अरविन्दो (1872-1950), रवीन्द्रनाथ टैगोर (1861-1941) एवं सरोजिनी नायडू (1879-1949), हरिन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय (1998-?), स्वामी विवेकानंद (1863-1920), गोपाल कृष्ण गोखले (1866-1915) जैसे राजनीतिक लेखक और अंग्रेजी में सुरेन्द्रनाथ बनर्जी (1848-1625) जैसे प्रभावशाली वक्ता सम्मिलित हैं। पंडित मदनमोहन मालवीय (1861-1646), मोतीलाल नेहरू (1861-1931) और लाला लाजपत राय (1865-1928) जैसी राष्ट्रीय हस्तियों ने भी अपने व्याख्यान और रचनाओं में अंग्रेजी का प्रयोग किया।

महात्मा गाँधी एवं पं. जवाहरलाल नेहरू जैसी भारतीय राष्ट्रवादी हस्तियों ने अंग्रेजी का संभवतः समेकित रूप से उत्कृष्ट प्रयोग किया। इन दोनों ने ही विदेश में शिक्षा ग्रहण की थी तथा ज्यादा से ज्यादा भारतीय बुद्धिजीवी वर्ग एवं ब्रिटिश शासकों के बीच पहुंच बनाने के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग किया। गाँधी जी का अंग्रेजी लेखन तीन सुस्पष्ट कालों में बांटा गया है, (1888-1891) संक्षिप्त प्रारंभिक लंदन काल (1893-1915) साउथ अफ्रिका काल एवं (1915-1948) भारतीय कालावधि के तैंतिस वर्ष (नायक : 1982, 120-21)। पं. जवाहर लाल नेहरू ने अंग्रेजी में पुस्तक, लेख, प्रेस वक्तव्य, व्याख्यान इत्यादि व्यापक रूप से लिखा। पं. जवाहर लाल नेहरू ने पुस्तकों निबंधों प्रेस वक्तव्यों, व्याख्यानों इत्यादि के रूप में अंग्रेजी में व्यापाक रूप से लिखा। गाँधीवाद से विद्रोह करने वाले सुभााचंद्र बोस (1897-1945) तथा मुहम्मद इकबाल (1873-1938), मुहम्मद अली जिन्ना (1875-1948) जैसे लोग भी कभी-कभी खुद को अभिव्यक्त करने के लिए अंग्रेजी का प्रयोग करते थे। भारतीय प्रेस के लिए भी अंग्रेजी प्रमुख भाषा बनी, जिसके परिणामस्वरूप 19वीं शताब्दी के अंतिम दशकों एवं 20वीं शताब्दी के प्रारम्भिक दशक के आद्योपांत तक हम पत्रकारिता, ऐतिहासिक लेखन, धार्मिक और दार्शनिक लेखन जैसे क्षेत्रों के अतिरिक्त जीवनियों आत्मकथानकों के लेखन में अंग्रेजी का बढ़ता प्रयोग देखते हैं।

1930 के शुरुआत से 70वें दशक तक का समय अंग्रेजी में भारतीय लेखन का संभवतः सबसे सफल एवं पूर्ण उर्वरक/फलदायी काल रहा। उपन्यासकारों के त्रिरत्न मुल्कराज आनंद (1905-2004), आर.के. नारायण (1906-2001), और राजा राव (1908-2006) इन सभी ने अंग्रेजी में एक अंग्रेज के समान उत्कृष्ट रचना की। इनके साथ ही स्वतंत्रता पूर्वकाल में के.एस. वेंकटरमाणी (1891-1951), के. नागराजन (1893-?) एवं अहमद अली (1910-1994) ने अंग्रेजी में भारतीय लेखन में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

भारत की स्वतंत्रता ने अंग्रेजी का प्रयोग एवं अंग्रेजी में भारतियों द्वारा रचित साहित्य की बढ़ती स्वीकृति को बहुफलदायी रूप में देखी। स्वतंत्रता पूर्व लेखकों द्वारा संस्थापित परंपरा को अनेक नये लेखकों ने क्षेत्रीय स्तर तक और अधिक विस्तृत किया। एम.के. नाइक तर्क देते हैं कि '1947 के बाद मान्य राष्ट्रीय पहचान' की कमी 'भारतीय अंग्रेजी लेखकों के लिए एक बड़ी उपलब्धि सिद्ध हुई। स्वतंत्रता की आगामी शताब्दियों में पी. लाल द्वारा 1958 में कलकत्ता में आयोजित अग्रगामी लेखकों के वर्क ॉप ने उल्लेखनीय योगदान दिया; काव्य में निसीम एजीकल (1924-2004), ए.के. रामानुजन (1929-93), आर. पार्थसारथी (1934), जयंत महापात्र (1928-2001), केयकी एन. दारूवाला (1937-?), कमलादास (1934-?); कहानियों में नीरद सी. चौधरी (1897-1999) एवं उपन्यास में भवानी भट्टाचार्य (1906-88), मनोहर मालगॉवकर (1913-2010), खुशवन्त सिंह (1918-?), बालचंद्र

राजन (1920-2009), जी.वी. देसानी (1909-2002), आर.पी. झावला (1927-?), कमला मार्कण्डेय (1924-2004), नयनतारा सहगल (1927) एवं अनीता देसाई (1937), जिनमें से कुछ ने अंग्रेजी में नाटक एवं काव्य में भी योगदान दिया। यह संभवतः अंग्रेजी में भारतीय लेखन का सबसे फलदायी काल रहा। जिसमें साहित्य के लेखकों के लिए अभिव्यक्ति के निर्विवाद रूप से वैध माध्यम के रूप में अंग्रेजी को मान्यता मिली।

अंग्रेजी में भारतीय लेखकों की नई पीढ़ी में अमिताव घोष, गिरी ा कर्नाड, वी.एस. नायपॉल, सलमान रुश्दी इत्यादि शामिल है। अंग्रेजी में अधिकांश विशिष्ट भारतीय लेखक, विशिष्ट रूप से सबसे समृद्ध काल से संबंध रखने वाले श्री अनविन्दों, मुल्क राज आनन्द, आर.के. नारायण, राजा राव, खु ावन्त सिंह इत्यादि ने अपने अंग्रेजी लेखन में स्वयं का एक विशिष्ट संसार स्थापित करने का प्रयास किया। एक ऐसा संसार जो अंग्रेजी एवं भारतीय दोनों के रूप में देखा जा सकता है। हालांकि भाषा और पहचान, दूसरे शब्दों में मातृभाषा और अंग्रेजी के बीच का यह खिचाव, इस सीमा तक रहा कि अनेक भारतीय लेखक प्रायः दुविधाग्रस्त रहते हैं कि वे अपनी सृजनात्मक अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में मातृभाषा और अंग्रेजी में से किस भाषा का चयन करें। परिणामस्वरूप, आज बहुत से भारतीय लेखक क्षेत्रीय भाषा और अंग्रेजी दोनों में लिखते देखे जा सकते हैं। इस विषय में रवीन्द्रनाथ टैगोर को एक महत्वपूर्ण उदाहरण के रूप में देख सकते हैं जिन्होंने ज्यादातर बांग्ला में लिखा परंतु परिवारिक परंपरा शिक्षा और लेखक के रूप में अपनी पहचान के कारण उन्हें अंग्रेजी में भी लिखना पड़ा। संभवतः संयोग के कारण भी जैसे कि कुछ विद्वान टैगोर के अंग्रेजी लेखनों को मात्र संयोग के रूप में मानते हैं।

14.5 अंग्रेजी अनुवाद में भारतीय साहित्य

जैसा कि पहले भी उल्लेख किया जा सकता है कि अनुवाद और व्याख्या भारत के इतिहास में सबसे निर्णायक पहलू रहे हैं जहाँ साहित्यिक उत्पादन बड़े पैमाने पर हुआ हे। जिस समय भारत में केवल व्यापार और वाणिज्य के उद्देश्यों से ईस्ट इंडिया कम्पनी स्थापित की गई ठीक उसी समय से भाषाओं के बीच यह विनिमय आरंभ हुआ। जैसा कि अर्थपूर्ण तरीके से सुजीत मुखर्जी (नायर : 2002, 27) ध्यान देते हैं : अंग्रेजों ने 'भारतीय भाषाएं सीखना शुरू किया जबकि भारतियों ने अंग्रेजी सीखना शुरू किया'। यद्यपि ऐसे यूरोपियन भी थे जो पहेल से ही भारतीय भाषाएं सीख रहे थे और भारतीय भी बहुत पहले से अंग्रेजी सीख रहे थे। उपनिवे ावाद की यह प्रक्रिया लेन-देन के प्रतिमान पर कार्य करती थी। इसमें भारतीय, अंग्रेजों की भाषा व संस्कृति से परिचित हुए और ठीक उसी समय अंग्रेजों को भारतीय भाषाएं सीखनी पड़ी। मुं ाी एवं मौलवी के साथ प्राच्यवादी स्वयं भी, अठारहवीं शताब्दी के अंतिम दो दशकों के आसपास संस्कृत व अन्य देशी भाषाओं के शास्त्रीय ग्रंथों के अंग्रेजी अनुवाद में सक्रिय रूप से जुड़े हुए थे। फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना के पश्चात् अर्थात् 1800 के बाद ये लोग हिन्छी, उर्दू, बांग्ला और मराठा अर्थात् भाषाओं या आधुनिक भारतीय भाषाओं या आधुनिक भारतीय भाषाओं से अंग्रेजी में अनुवाद के कार्य में लगे हुए थे।

अंग्रेजी में अनूदित होने वाले प्रारंभिक ग्रंथों (जिनमें से कुछ सीधे अंग्रेजी में अनुवाद नहीं किए गए अपितु फारसी के माध्यम से) में से एक धर्मशास्त्र है, जो 1772 से 1785 तक गवर्नर इन ऑफिस रहे वॉटेन हेस्टिंग्स ने संस्कृत से फारसी में भारतियों द्वारा और बाद में फारसी से अंग्रेजी में अंग्रेजों से अनुवाद करवाया। इसके अतिरिक्त 1785 में चार्ल्स विल्किंस का संस्कृत से अंग्रेजी में भागवत गीता का अनुवाद, 1789 में सर विलियम जोन्स का संस्कृत से अंग्रेजी में शकुन्तला का अनुवाद तीन पुराणों व मभाभारत के हालहैंड के अनुवाद तथा व्याकरण, विधि के अनेक ग्रंथों एवं अनेक शास्त्रीय ग्रंथों के अनुवाद को, उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभिक दशकों में फोर्ट विलियम कॉलेज ने बढ़ावा दिया।

भारत में अनूदित साहित्य के इतिहास में अपने एक विद्वतापूर्ण योगदान ''ट्रांसलेटिंग कल्चर त्रिवेदी अंग्रेजी में अनूदित भारतीय साहित्य का एक चार स्तरीय विभाजन देते हैं :

(क) इंडिक और प्राच्यवादी रचनाएं मुख्यतः प्राचीन और मध्यकालीन संस्कृत अथवा पालिग्रंथ के अंग्रेजी में अनुवाद (नव प्राच्यवादी, उत्तर प्राच्यवादी)।

(ख) मुख्यतः भक्ति में संबंध रखने वाली नव प्राचीन ओर मध्यकालीन रचनाओं के अनुवाद के रामानुजन या

टैगोर के कबीर के अनुवाद (नव प्राच्यवादी, उत्तर प्राच्यवादी)।

(ग) यर्थाथ रूप से आधुनिक भारत के विविध पक्षों को द ार्शिता कथा साहित्य जैसे कि टैगोर या प्रेमचन्द की रचनाएं।

(घ) अंग्रेजी में अनूदित आधुनिक या उच्च/अत्य आधुनिक लेखक।

जी.एन. देवी भी अपनी पुस्तक (1993) में अंग्रेजी में अनूदित भारतीय साहित्य को चार चरणों में बांटते हैं।

(क) औपनिवेशिक काल : 1750 - 1950

(ख) पुनर्जागरण काल : 1876 - 1950

(ग) राष्ट्रवादी काल : 1902 - 1929

(घ) रूढ़िवादी काल : 1912 - 1920

इस प्रकार का श्रेणी विभाजन अक्सर अंग्रेजी अनुवाद में भारतीय सात्यि नाम दिए जाने वाले साहित्य के व हद समूह के श्रेणी विभाजन में किए गए प्रयासों को द र्शाते हैं। स्वतंत्रता के बाद से अनुवाद का कार्य और अंग्रेजी में भारतीय भाषा साहित्यों के अनुवाद की औपचारिक व्यवस्था, संस्थागत के साथ-साथ स्वतंत्र दोनों स्तरों पर एक प्रचुर मात्र में उत्पन्न होने वाली व्यापार बन गयी। साहित्य अकादमी व नैशनल बुक ट्रस्ट जैसे सरकार से समर्थित संस्थान, कथा जैसा निजी उद्यम, पेंगुइन इंडिया, ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस (भारत), रूपा एण्ड कम्पनी तथा सीगल जैसे प्रकाशन गृहों ने भारतीय साहित्यिक अध्ययनों में अंग्रेजी अनुवाद में भारतीय साहित्य की सफल पहचान बनाने में योगदान दिया है। इनमें से कुछ संस्थानों जैसे कि साहित्य अकादमी और कुछ हद तक एन.बी.टी. का प्रभाव क्षेत्रीय स्तर तक फैला हुआ है। जिसने उन्हें भाषा साहित्य की रचनाओं की बड़ी संख्या में से समझने, जानने, चुनने और अंग्रेजी में अनुवाद करने में सहायता की है।

इस प्रकार के सभी अनुवाद उद्यमों, सरकारी के साथ-साथ गैर सरकारी दोनों स्तरों व मंचों पर अनुवाद गतिविधियों को प्रोत्साहित करते रहे हैं। अनुवादक न केवल अनुवाद किए जाने वाले लेखकों और पाठों को चुनने अपितु अंग्रेजी के अपने प्रयोगों में भी अधिक से अधिक छूट लेने लगे हैं। आज 'अंग्रेजी अनुवाद में भारतीय साहित्य के अंतर्गत उत्पादित साहित्य की मात्र इतनी बड़ी है कि प्रत्येक वर्ष भारतियों व कुछ गैर भारतियों द्वारा भी भारत व विदेश दोनों जगह अंग्रेजी में अनूदित भाषा पाठों का अधिकारिक लेखा-जोखा बनाना लगभग असंभव हो गया है।

14.6 'भारतीय अंग्रेजी' और भारत में अंग्रेजी भाषा के विभिन्न रूप

भारत की स्वतंत्रता के साथ भारतियों के लिए अंग्रेजी लगभग अधिकारिक रूप से पैत क सम्पत्ति बन गई जिसे वे अपने तरीके से अभिव्यक्ति के विभिन्न रूपां के प्रयोग में लाते थे। ऐसे हजारों भारतीय जो शुरुआती ब्रिटिश भारत में अपने आप को अंग्रेजी में या इसके किसी न किसी रूप में अभिव्यक्त करते थे। लेखकों, विचारकों और बुद्धि जीवियों के लिए, अब अंग्रेजी में भारतीय लेखन देखने के लिए अंग्रेज दर्शक नहीं थे। दूसरे शब्दों में, एक भाषा के रूप में अंग्रेजी बढ़ती स्वतंत्रता के साथ प्रयोग की जाने वाली तथा इस भाषा का स्थान संप्रेषण के सभी प्रकारों में और अधिक सुदृढ़ हुआ।

भारत की स्वतंत्रता के पश्चात् लेखकों के साथ-साथ अंग्रेजी में भारतीय लेखन और अंग्रेजी अनुवादों में भारतीय साहित्य के अभ्यास कर्ताओं दोनों ने पहले के बजाए अब अधिक स्वतंत्रता के साथ अंग्रेजी का प्रयोग करना शुरू कर दिया। अंग्रेजी को माना जाने लगा जैसे की यह हमेशा से एक भारतीय भाषा ही हो। हालांकि लेखकों, अनुवादकों और अन्य अभ्यासकर्ता जो या तो स्वतंत्रता व स्वतंत्रता पूर्व काल के प्रत्यक्षदर्शी है या जो कम से कम धारणागत रूप से उस समय में प्रचलित भाषाओं के साथ स्वयं को जुड़ा हुआ मानते हैं, उन्होंने अपनी प्रतिक्रियाएं दो तरीकों से अभिव्यक्त की है : या तो सृजनात्मक अभिव्यक्ति के लिए एक माध्यम के रूप में अंग्रेजी के प्रयोग का विरोध करना और इसके पर अपनी मातृभाषा का प्रयोग करना या अंग्रेजी का प्रयोग करना जो दृष्टिगत रूप से ब्रिटिश अंग्रेजी से भिन्न है। दूसरे शब्दों में, भारतीय अंग्रेजी।

दूसरी ओर ऐसे लोग जिन्होंने न तो उस काल को देखा है एवं न ही अपने आप को उनकी भावनाओं के साथ अधिक जोड़ पाते हैं, वे अंग्रेजी का प्रयोग निष्पक्ष या गैर राजनैतिक रूप से करते हैं इस श्रेणी में आने वाले अधिकतर स्वतंत्रोत्तर लेखक/अभ्यासकर्ता है। या वे जिन्होंने अंग्रेजी का प्रयोग प्रथम भाषा के रूप में किया है। अंग्रेजी अपने संपूर्ण कैरियर के दौरान 'अंग्रेजी (माध्यम से) शिक्षा' ग्रहण करने वाले लोग स जनात्मक लेखन के लिए प्राथमिक रूप से अंग्रेजी को लेते हैं जबकि अपने जीवन में अंग्रेजी से देर से जुड़ने वाले लोग सृजनात्मक अभिव्यक्ति में अधिक द्विभाषी होते हैं। इस प्रकार यह एक व्यक्ति की व्यक्तिगत शिक्षा और समझ का मामला है।

अंग्रेजी के साम्राज्यवादी दुर्भाग्य का कारण समझी गई और उत्तरवर्ती काल में इन भूतपूर्व उपनिवे ों में चुनौती दी गई एवं अंग्रेजी ने एक अंतर्राष्ट्रीय भाषा का दर्जा प्राप्त किया, एक ऐसी भाषा के रूप में जो कई महाद्वीपों में संभवतः सबसे अधिक सुविधाजनक रूप में प्रयोग और इस्तेमाल की जाती है। और सभी जगह यह भिन्न रूपों में प्रयोग होती है। इसने 'अफ्रीकन अंग्रेजी', 'भारतीय अंग्रेजी' इत्यादि नाम से जानी जाने वाली श्रेणियों के लिए मार्ग प्र ास्त किया। अब भारतीय अंग्रेजी एक औपचारिक श्रेणी है और इसी प्रकार भारत के भीतर भी अंग्रेजी के कई विभिन्न प्रकार हैं जैसे : तमिल-अंग्रेजी, उड़िया-अंग्रेजी, बांग्ला-अंग्रेजी इत्यादि।

या तो अंग्रेजी की अनुपस्थिति के कारण या साम्राज्यवाद की सचेत राजनैतिक विरोध के कारण या अंग्रेजी के साथ स्वयं के निजी जुड़ाव के कारण स्वतंत्रता के प्रश्न में बढ़ती आसक्ति की वजह से अंग्रेजी में यार तो मूल रचनाओं में या मूल रचनाओं के अनुवादों में बहुत सी भारतीय अभिव्यक्तियां को ज्यो का त्यो अपनाया गया। जहां कई बार अनुवादक महसूस करते हैं कि इन अभिव्यक्तियों को अतिरिक्त जानकारी के साथ उपलब्ध कराना सुविधाजनक होगा या तो बृहद शब्द संग्रह या पाद टिप्पणी के रूप में, वहीं पर कुछ अनुवादक क्षेत्रीय अभिव्यक्तियों को बिना किसी शब्द संग्रहण सूची या पाद टिप्पणियों के ही छोड़ देते हैं। यह प्रचलन अधिकतर उत्तर उपनिवेशिक अनुवादकों में देखा गया है।

14.7 सारांश

भाषा के रूप में अंग्रेजी और उसके साथ आई पश्चिम की सांस्कृतिक परंपरा भारत के औपनिवेशिक भूतकाल में गहरी जमी हुई है। अंग्रेजी ने न केवल उपनिवेशकों और उपनिवे ातों के बीच परस्पर सम्पर्क के माध्यम के रूप में कार्य किया, अपितु औपनिवेशिक काल में बहुतों के राजनैतिक स्वार्थों को पूरा करने में भी सहायक रही। इस भाषा ने उन लोगों को शक्ति प्रदान की जिन्होंने इसे सीखा बाकि वे आगे इसका प्रयोग बोलचाल और लिखित माध्यमों में कर सके जिसके द्वारा औपनिवेशिक भारत के इतिहास लेखन में विमर्श आरम्भ हुए।

भाषा एक व्यक्ति, एक समाज और एक राज्य को शक्ति ाली बना सकती है। भाषा शक्ति और प्रतिरोध क्षमता के विमर्श उत्पन्न कर सकती है। इस प्रकार अंग्रेजी धीरे-धीरे एक ऐसी भाषा बन गई जिसे यूरोपीय ज्ञान के जवाबी लेखन में प्रतिस्पर्धा और संघ्र्ा के माध्यम के रूप में प्रयोग किया गया। शेक्सपीयर के दि टॅम्पेस्ट में केलिबेन अपने मालिक प्रोस्पेरी को स्पष्ट रूप में जब यह कहता है :

"You taught me language; and my profit on't Is, I Know how to curse. The red plague ridyou for learning me your language" (Shakespeare's The Tempest: Act I, scene ii)

सत्ता में परिवर्तित उपनिवे ा ने केन्द्र को 'जवाबी लेख' लिखने आरम्भ कर दिए - एक ऐसा तथ्य जिसने 'उत्तर-औपनिवेशिक' कहे जाने वाले बहुचर्चित विमर्श को स्वरूप प्रदान किया एवं नए राष्ट्र-राज्य के साहित्यिक और सांस्कृतिक परंपरा के वर्तमान और उभरते समागम पर चिन्तन व्यक्त किया।

वै वीकरण के बढ़ते आयामों के साथ अंग्रेजी की भूमिका और विस्तृत परिद य पर स्थापित हुई। स्थानीय और वै वक के बीच के अन्तर को कम करने की प्रक्रिया ने विभिन्न क्षेत्रों में भाषा की उपयोगिता की बहुस्तरीय संभावनाओं को विकास प्रदान किया। तकनीक के प्रस्फुटन और भरतीय अर्थव्यवस्था व इस कारण से मानव जीवन के बदलते प्रतिमानों ने प्रका ान उद्योग जैसे अंग्रेजी भाषा से जुड़े संस्थाओं व उद्यमों को उनके दृष्टिकोण और प्रक्रियाओं में और बहुफलदायी संभावनाओं के साथ सहायता की है।

इस प्रकार अंग्रेजी हमेशा से ही शक्ति की भाषा रही है। औपनिवेशिक काल से ही भारतीय इतिहास में अंग्रेजी के परिचय विस्तार और प्रयोग के आस-पास विमर्श किए जाते रहे हैं। अंग्रेजी के ज्ञान में और उसके इर्द-गिर्द तथा विमर्श के निर्माणकर्ता के रूप में एक व्यक्ति के स्तर पर आधारित पहचाने बनाई जाती हैं। औपनिवेशिक काल से लेकर आज तक भारतीय इतिहास लेखन संभवतः सर्वोत्तम पहलुओं में से एक है जहाँ यह 'भाषा- ाक्ति-विम ि' के अन्तःसंबंध का व्यवहार निरंतर बढ़ते और परिवर्तित होते हितों, परिणामों और निःसंदेह स्वी ति के साथ भी होता है। यह भारतीय पाठों के अंग्रेजी में बढ़ते अनुवादें को न केवल भारत में अपितु विश्वस्तर पर संचालन के लिए एक स ाक्त संदर्भ प्रदान करता है।

14.8 अभ्यास के लिए प्रश्न

1. उपनिवे ावाद के अंतर्गत अंग्रेजी के लिए किस भूमिका पर विचार किया? क्या आप उल्लेख कर सकते हैं कि वे किस प्रकार के भारतीय पाठ थे जिनका औपनिवेशिक सरकार अंग्रेजी में अनुवाद करा रही थी?
2. अंग्रेजी में लिखने वाले कम-से-कम तीन बड़े भारतीय लेखकों एवं उनके कार्य का संक्षिप्त वर्णन करें।
3. अंग्रेजी में अनूदित भारतीय रचनाओं का एक संक्षिप्त विवरण दीजिए।
4. भारतीय अंग्रेजी के कम से कम दो मुख्य लक्षण बताइए।

14.9 शब्दावली

उत्तर औपनिवेशिक : उत्तर स्वतंत्रता काल या उसी काल में लेखकों का लेखन/साहित्य।

नव औपनिवेशिक : औपनिवेशिक की नकल करने का अर्थ देने के लिए उत्तर औपनिवेशिक के विकल्प के रूप में प्रयुक्त एक शब्द।

भारतीय भाषाओं जैसे कि हिन्दी, उर्दू, बांग्ला, पंजाबी इत्यादि का अर्थ देने के लिए भारतीय अनुवाद चिंतकों द्वारा निर्मित और प्रयोग किया जाने वाला शब्द।

14.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- द एम्पायर राइटरस बैक : थ्योरी एण्ड पेक्टिस नइ पोस्ट कॉलोनियल लिटरेचर्स बिल ए क्रॉफ्ट, गैरेथ ग्रिफिथ्स और हेंलन टिफिन, लंदन और न्यूयार्क, रूटलेज, 1989।
- द पोस्ट कॉलोनियल स्टडीज रीडर, बिल एक क्रोफ्ट गैरेथ ग्रिफिथ्य और हेलन टिफिन (संपा.), लंदन और न्यूयार्क : रूटलेज, 1995।
- ए हिस्ट्री ऑफ इंडियन लिटरेचर 1800-1910, ि ाि ार कुमार दास, नई दिल्ली : साहित्य अकादमी, 1991।
- ए हिस्ट्री ऑफ इंडियन लिटरेचर 1911-1956, ि ाि ार कुमार दास, नई दिल्ली : साहित्य अकादमी, 1995।
- इन एनदर टंग : एस्सेज ऑन इंडियन इंग्लि ा लिटरेचर, जी.एन. देवी, मद्रास : मैकमिलन इंडिया, 1993।
- हायर एजुके ान इन बंगाल अंडर ब्रिटिश रूल, जे. घ्ाोा, कलकत्ता : द बुक कम्पनी, 1926।
- पोइट्री ऑफ इंग्लि ा ऐनेसां, जे.डब्ल्यू, हेबेल और एच.एच. हडसन (संपा.) न्यूयार्क, 1929।
- ए हिस्ट्री ऑफ इंडियन इंग्लि ा लिटरेचर, एम.के. नाइक, नई दिल्ली : साहित्य अकादमी, 1982।
- ट्रांसले ान, टेक्सट एण्ड थ्योरी : द पैराडाइम ऑफ इंडिया रुकमिण माया नायर (संपा.), नई दिल्ली : सेज पब्लिके ानस, 2002।

- अवर लैंगवेज, सिमान पॉटर, इंग्लैण्ड : पैनगुइन बुक्स, 1990।
- इन ट्रांसले ान : रिफलेक ान्स, रीफ्रेक ान्स, ट्रांसफ्रोर मे ान्स पॉल सेंट पियरे, और प्रफुल्ल सीकार (संपा.), एमस्ट्रडॅम/फिलाडेल्फिया : जोन बेनजामिंस पब्लि िंग कम्पनी 2007।
- द बिगनिंग्स ऑफ इग्लिं ा लिटरेरी स्टडी इन ब्रिटिश इंडिया, गौरी विश्वनाथन ऑक्सफोर्ड लिटरेरी रिव्यू 9 (1 और 2)।